* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा

श्रीकृष्णको झूला झुलाती श्रीराधाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ — गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, जुलाई २०१७ ई० — संख्या ७

पूर्ण संख्या १०८८

'झुलावति स्यामा स्याम-कुमार'

झुलावति स्यामा स्याम-कुमार।
हेम-रत्न-निर्मित झूला पर, रुचिर रेसमी डोरी डार॥
मन अति मुदित झुलावति गोरी, सह न सकति स्त्रम तन सुकुमार।
सोहत ललित कपोल-भाल पर स्वेद-बिंदु स्त्रम-जनित अपार॥
कूदि परे लखि स्त्रमित श्रीमती, झट झूले का कर परिहार।
बैठारी कर-कमल पकरि कै निज कर, उर भरि अतिसय प्यार॥
कोमल कुसुम-कली मंडित सिंहासन पर, प्रिय अमित उदार।
निज पट-अंचल पौंछे निज कर स्वेद-वारि-कन नंद-कुमार॥
ललितादिक सखियन बैठारे जीवन-धन करि अति मनुहार।
आदरसहित मधुर बानी सौं, करन लगीं सौरभित बयार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, जुलाई २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail **सजिल्द शुल्क** — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—आनन्द, सच्चा आनन्द तुम्हारे अन्दर है और वह नित्य है। तुम बाहरी वस्तुओंमें—धनमें, जनमें, मानमें, प्रतिष्ठामें, भोगोंमें, आराममें, विलासितामें और परिवारमें आनन्द खोजते हो—यही तुम्हारा भ्रम है।

याद रखो—आनन्द किसी भी सांसारिक स्थिति-विशेषमें नहीं है। तुम जो समझते हो कि 'मेरी अमुक परिस्थिति हो जायगी, इतना धन हो जायगा, अमुक अधिकार मिल जायगा, पुत्र हो जायगा, जगत्‌में यश फैल जायगा और लोग मेरा सम्मान करने लगेंगे, तब मैं सुखी हो जाऊँगा' यह तुम्हारा भ्रम है।

याद रखो—तुम्हारे वर्तमान दुःखका या आनन्दके अभावका कारण कोई परिस्थिति नहीं है, इसका प्रधान कारण है, नित्य सत्य आन्तरिक आनन्दको न जानना। आनन्दमय भगवान्‌के नित्य सान्निध्यका अनुभव न करना।

याद रखो—जब तुम्हारी वृत्ति अन्तर्मुखी हो जायगी, जब तुम नित्य-निरन्तर सच्चिदानन्दमयके सान्निध्यका सर्वदा अनुभव करने लगोगे जब उन्हीं आनन्दमयके साथ नित्य संयुक्त हो जाओगे तब बाहरी कोई भी परिस्थिति तुम्हारे आनन्दको नहीं छीन सकेगी। अपमान, अकीर्ति, दरिद्रता, मित्रहीनता आदि किसी भी स्थितिमें तुम्हारे आनन्दका अभाव नहीं होगा।

याद रखो—तुम जो अपनेको दुखी मान रहे हो, इसीसे दुखी हो। दुखी माननेका कारण है अभावका बोध; अभावमें प्रतिकूलताकी अनुभूति होती है और प्रतिकूलता ही दुःख है। संसारकी परिस्थिति तो कभी ऐसी होगी ही नहीं कि जो सदा और सर्वथा सबके मनके अनुकूल हो। प्रत्येक परिस्थितिमें मंगलमय श्रीभगवान् स्वयं विद्यमान हैं, प्रत्येक परिस्थिति मंगलमय भगवान्‌का मंगल-विधान है, और प्रत्येक परिस्थिति वस्तुतः लीलामय भगवान्‌की लीलाका ही एक अंग है। यह विश्वास करके यदि तुम परिस्थितिके बाहरी रूपको न देखकर, परिस्थितिके परदेमें छिपे हुए श्रीभगवान्‌को, श्रीभगवान्‌के मंगल-विधानको या श्रीभगवान्‌की लीलाको देखने लगो, उनका मधुर स्पर्श पा सको तो सभी परिस्थितियाँ तुम्हारे लिये अनुकूल हो जायँगी, क्योंकि सभीमें भगवान्‌की अनुभूति होगी—अभाव कहीं रहेगा ही नहीं; और जब अभाव नहीं होगा तो दुःख भी नहीं होगा। वस्तुतः दुःख नहीं होगा, इतना ही नहीं—भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव परम अनुकूल होनेसे तथा स्वयं परमानन्दमय होनेसे वह तुम्हारे लिये परमानन्दका कारण होगा। तुम उस समय ऐसे विलक्षण आनन्दका अनुभव करोगे कि फिर जागतिक किसी भी अभावकी स्मृति ही तुमको नहीं होगी।

याद रखो—भाव-अभाव, अनुकूलता-प्रतिकूलता जो कुछ भी है, सभी लीलामय श्रीभगवान्‌के स्वाँग हैं, जिनको तुम्हारे मंगलके लिये ही भगवान्‌ने धारण किया है। उन भगवान्‌को जब पहचान लोगे तो फिर चाहे वे किसी भी सुन्दर या भयानक स्वाँगमें रहें, तुमको न भय होगा, न दुःख। स्वाँग तुम्हारे लिये मनोरंजनकी सामग्री होगी और तुम उसे देख-देखकर पल-पलमें और पद-पदपर मुग्ध होते रहोगे। तुम्हारा दुःख-स्रोत सदाके लिये सूख जायगा। तुम फिर स्वयं आनन्दके भण्डार बन जाओगे।

याद रखो—जो लोग आनन्दके लिये परिस्थितिकी अनुकूलता खोज रहे हैं या अभावकी पूर्ति करके आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, उनको कभी स्थिर नित्य आनन्दके दर्शन होंगे ही नहीं; क्योंकि उनका अभाव कभी मिटनेका ही नहीं है। संसारमें कहीं भी-किसीमें भी पूर्णता नहीं है। वे जो कुछ भी पायेंगे, उसीमें उन्हें अपूर्णता—अभावकी अनुभूति होगी और अभावकी अनुभूति ही प्रतिकूलता है। अतएव वे कभी सुखी हो ही नहीं सकेंगे।

याद रखो—सच्चा सुख या परम आनन्द चाहते हो तो सांसारिक अभाव या प्रतिकूलताका ही अभाव कर दो। भगवान् नित्य हैं, सत्य हैं, सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा हैं; उन्हींको देखो। उनका कहीं भी, कभी भी अभाव नहीं है। उनको सर्वत्र देखने लगोगे तब सांसारिक अभाव या प्रतिकूलताका अभाव अपने-आप ही हो जायगा; क्योंकि भगवान्‌के भावमें ही—इनके होनेका भ्रम हो रहा है। ये जहाँ दीख रहे हैं, वहाँ वस्तुतः ये नहीं हैं, वहाँ भगवान् ही हैं। यदि तुम सर्वत्र व्याप्त सर्वरूपमें स्थित उन भगवान्‌को देख सकोगे तो तुम्हें उस नित्य सत्य आनन्दकी प्राप्ति सहज ही हो जायगी, जिसकी खोजमें तुम सदा-सर्वदा लगे रहते आये हो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भक्त राजा इन्द्रद्युम्न

सत्ययुगकी बात है, मालवप्रदेशकी अवन्तिकापुरीमें इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा राज्य करते थे। उनका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था। भगवान् विष्णुके चरणोंमें उनकी अनन्य भक्ति थी। वे अपने चर्मचक्षुओंसे भगवान् श्रीहरिका साक्षात् दर्शन पा लेनेके लिये सदैव उत्कण्ठित रहते थे।

एक दिन राजाके यहाँ देवर्षि नारद पधारे। राजाने पाद्य, अर्घ्य आदि देकर देवर्षिका पूजन किया और उन्हें सुन्दर सिंहासनपर बैठाकर विनयपूर्वक कहा—'भगवन्! आज आपके पदार्पणसे मेरा यह घर और कुल पवित्र हो गये। आपके दर्शन पाकर यह सेवक कृतकृत्य हो गया। योग्य सेवाके लिये आदेश देकर मुझे अनुगृहीत कीजिये।'

राजाकी यह विनयभरी बात सुनकर देवर्षि नारद मुसकराते हुए बोले—'नृपश्रेष्ठ! मैंने सुना है, तुम भगवान् श्रीहरिका साक्षात् दर्शन करनेकी इच्छासे नीलाचल जानेका विचार कर रहे हो। यदि ऐसी बात है तो तुमने यह बहुत उत्तम निश्चय किया है।

नारदजीकी बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'भगवन्! इस समय मेरा मन भगवान् नीलमाधवके दर्शनके लिए उत्सुक एवं विकल है। अतः आप और हम दोनों रथपर बैठकर नीलाचल चलें और भगवान्‌के दर्शन करें।'

नारदजीके 'तथास्तु' कहनेपर महाराज इन्द्रद्युम्नने यात्राकी आवश्यक तैयारी कर ली और राजकीय मन्दिरमें भगवान् विष्णुके दर्शन करके वे नारदजीके साथ रथपर सवार हुए मार्गमें महानदी तथा भुवनेश्वरक्षेत्र आदि पुण्यस्थानों एवं देवताओंका दर्शन करते हुए वे यथासमय दल-बलसहित पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जा पहुँचे। वहाँ राजा इन्द्रद्युम्नने नारदजीके साथ भगवान् नृसिंहजी, कल्पवट तथा श्रीनीलमाधवके स्थानके दर्शन किये।

तत्पश्चात् उन्होंने एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ किया। जब वे अश्वमेध यज्ञ नौ सौ निन्यानबेकी संख्यातक पहुँच गये, तब एक दिन रातके चौथे प्रहरमें राजा इन्द्रद्युम्नने अविनाशी भगवान् विष्णुका ध्यान किया। उस ध्यानमें उन्हें एक रत्नसिंहासनपर शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका दर्शन हुआ। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति नीलमेघके समान श्याम थी। वे वनमालासे विभूषित थे। उनके दाहिने भागमें शेषजी विराजमान थे। भगवान्‌के वामभागमें भगवती लक्ष्मी विराजमान थीं। भगवान्‌के आगे ब्रह्माजी हाथ जोड़े खड़े थे। सनकादि मुनीश्वर उनकी स्तुति कर रहे थे। ध्यानमें भगवान्‌का इस प्रकार दर्शन पाकर राजा इन्द्रद्युम्नको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने नारदजीसे सब बातें कहीं। तब नारदजीने आश्वासन देते हुए कहा—'राजन्! इस यज्ञके अन्तमें तुम्हें भगवान् यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। ये सब बातें दूसरे किसीके आगे प्रकाशित न करना।'

राजा इन्द्रद्युम्नके अश्वमेध यज्ञके पूर्ण होनेपर वहाँ भगवान् स्वयं चार विग्रहोंमें प्रकट हुए। बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनचक्रके साथ भगवान् जगन्नाथजी दिव्य आसनपर विराजमान हुए। भगवान्‌के चार दिव्य रूप सम्पन्न हो जानेपर पुनः आकाशवाणी हुई कि 'इन चारों प्रतिमाओंकी नीलाचलपर कल्प-वृक्षके वायव्यकोणमें सौ हाथकी दूरीपर और भगवान् नृसिंहके उत्तरभागमें जो मैदान है, उसमें मन्दिर बनवाकर स्थापना करो।' राजाने उसका प्रसन्नतापूर्वक पालन किया। राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान् जगन्नाथजीकी स्थापना करके उनकी स्तुति की और फिर उन चारों काष्ठमयी प्रतिमाओंका विधिवत् पूजन किया। यह वही पुरुषोत्तमक्षेत्र है, जो चारों धामोंमेंसे एक है और जगन्नाथपुरीके नामसे प्रसिद्ध है। राजर्षि इन्द्रद्युम्न भगवान् पुरुषोत्तमको प्रसन्न करके नारदजीके साथ ब्रह्मलोकमें चले गये। [**स्कन्दपुराण**]

भगवदाश्रयसे लोक-परलोकका कल्याण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

लौकिक-पारलौकिक समस्त दु:खोंके नाश एवं समस्त लौकिक-पारमार्थिक सम्पत्तिकी सम्प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है भगवान्‌का अनन्य आश्रय लेकर सच्चे मनसे उनका भजन करना और लौकिक-पारलौकिक समस्त सुखोंके नाश एवं समस्त लौकिक-पारमार्थिक सम्पत्तिके सर्वनाशका साधन है—भोगोंका अनन्य आश्रय लेकर मनसे भगवान्‌को भुला देना। आज हम भगवान्‌को भूल गये हैं और हमारा जीवन केवल भोगोंका आश्रयी बन गया है। इसीसे इतने दु:ख, संताप और विनाशके पहाड़ हमपर लगातार टूट रहे हैं। जो लोग क्रियाशील और विविध कर्मसमर्थ हैं, उनको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भगवान्‌का सतत स्मरण करते हुए समयानुकूल स्वधर्मोचित कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये तथा जो असमर्थ हैं, उन्हें आर्त तथा दीनभावसे भगवत्प्रीतिके द्वारा धर्मके अभ्युदय एवं विश्वशान्तिके लिये अनन्यभावसे भगवान्‌को पुकारना चाहिये।

हमारी अनन्य पुकार कभी व्यर्थ नहीं जायगी। हममें होना चाहिये द्रौपदीका-सा विश्वास, होनी चाहिये गजराजकी-सी निष्ठा और सबसे बढ़कर हममें होनी चाहिये प्रह्लादकी-सी आस्तिकता और निष्काम भाव, जिसके वचनको सत्य करनेके लिये भगवान् नृसिंहरूपसे खम्भेमेंसे प्रकट हुए—**'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्।'** (श्रीमद्भा० ७।८।१८)

विपत्ति, कष्ट, असहाय स्थिति, अमंगल और अन्याय तभीतक हमारे सामने हैं, जबतक हम भगवान्‌को विश्वासपूर्वक नहीं पुकारते। एक महाशयने एक घटना सुनायी थी। एक घरमें गुण्डोंने पतिको पकड़ लिया और दो गुण्डे उसकी स्त्रीको वस्त्रहीन करके उसपर बलात्कार करनेको उद्यत हो गये। दोनों पति-पत्नी निरुपाय थे—असहाय थे। पत्नीने आर्त होकर—रोकर भगवान्‌को पुकारा। उसे द्रौपदीकी याद आ गयी। बस, तत्काल ही वे दोनों गुण्डे आपसमें लड़ गये। एकने दूसरेको छुरा मार दिया। उसके गिरते ही पति-पत्नीको छोड़कर शेष गुण्डे भाग गये और इस बीचमें पत्नीको कन्धेपर उठाकर पतिको बचकर भाग निकलनेका अवसर मिल गया।

भारतकी सती देवियाँ आज द्रौपदीकी भाँति भगवान्‌को पुकारें तो भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे। वे तुरंत किसी भी रूपमें प्रकट होकर सती देवियोंके सारे दु:ख हर लेंगे और उसी क्षणसे उनको दु:ख पहुँचानेवालोंके विनाशकी भी गारन्टी मिल जायगी।

दुष्ट दु:शासनके हाथोंमें पड़ी हुई असहाय द्रौपदीने

आर्त होकर मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कहा था—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(महा० सभा० ६८।४१—४३)

'हे गोविन्द! द्वारकावासी सच्चिदानन्द प्रेमघन! गोपीजनवल्लभ! सर्वशक्तिमान् प्रभो! कौरव मुझे अपमानित

कर रहे हैं। क्या यह आपको मालूम नहीं है ? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिनाशन जनार्दन! मैं कौरवोंके समुद्रमें डूबी जा रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये! हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगी! हे विश्वात्मा और विश्वके जीवनदाता गोविन्द! मैं कौरवोंसे घिरकर संकटमें पड़ गयी हूँ। आपकी शरणमें हूँ! आप मेरी रक्षा कीजिये।'

द्रौपदीकी आर्त पुकार सुनकर भक्तवत्सल प्रभु उसी क्षण द्वारकासे दौड़े आये और द्रौपदीको वस्त्र-दानकर उसकी लाज बचायी। पर दुष्ट दु:शासनने द्रौपदीके जिन केशोंको खींचा था, वे खुले ही रहे—दु:शासनको दण्ड मिलनेके दिनतक। द्रौपदी खुले केश पाण्डवोंके साथ वनमें रहती थी। भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलने गये। वहाँ द्रौपदीने एकान्तमें रोकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—

'मैं पाण्डवोंकी पत्नी, धृष्टद्युम्नकी बहन और तुम्हारी सखी होकर भी कौरवोंकी सभामें घसीटी जाऊँ! यह कितने दु:खकी बात है ? भीमसेन और अर्जुन बड़े बलवान् होनेपर भी मेरी रक्षा नहीं कर सके। धिक्कार है इनके बल-पौरुषको! इनके जीते-जी दुर्योधन क्षणभरके लिये भी कैसे जीवित है ? श्रीकृष्ण! दुष्ट दु:शासनने भरी सभामें मुझ सतीकी चोटी पकड़कर घसीटा और ये पाण्डव टुकुर-टुकुर देखते रहे।' इतना कहकर द्रौपदी रोने लगी। उसकी साँस लम्बी-लम्बी चलने लगी और उसने गद्गद होकर आवेशसे कहा—'श्रीकृष्ण! ये पति-पुत्र, पिता-भ्राता मेरे कोई नहीं हैं, पर क्या तुम भी मेरे नहीं रहे ? श्रीकृष्ण! तुम मेरे सम्बन्धी हो, मैं अग्निकुण्डसे उत्पन्न पवित्र रमणी हूँ, तुम्हारे साथ मेरा पवित्र प्रेम है और तुमपर मेरा अधिकार है एवं तुम मेरी रक्षा करनेमें समर्थ भी हो! इसलिये तुम्हें मेरी रक्षा करनी ही होगी।' तब श्रीकृष्णने रोती हुई द्रौपदीको आश्वासन देकर कहा—

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भाविनि।
बीभत्सुशरसंच्छन्नान् शोणितौघपरिप्लुतान्॥
निहतान् वल्लभान् वीक्ष्य शयानान् वसुधातले।
यत् समर्थं पाण्डवानां तत् करिष्यामि मा शुचः॥
सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि।
पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्येत् पृथिवी शकलीभवेत्॥
शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत्।

(महा० वन० १२। १२८—१३१)

'कल्याणी! तुम जिनपर क्रोधित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी थोड़े ही दिनोंमें अर्जुनके भयानक बाणोंसे कटकर खूनसे लथपथ हो जमीनपर पड़े हुए अपने पतियोंको देखकर तुम्हारी ही भाँति रुदन करेंगी। मैं वही काम करूँगा, जो पाण्डवोंके अनुकूल होगा। तुम शोक मत करो। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम राजरानी बनोगी। चाहे आकाश फट पड़े, हिमालय टुकड़े-टुकड़े हो जाय, पृथ्वी चूर-चूर हो जाय और समुद्र सूख जाय, परंतु द्रौपदी! मेरी बात कभी असत्य नहीं हो सकती।'

ये द्रौपदीके दु:खोंका नाश करनेवाले भगवान् आज कहीं चले नहीं गये हैं। द्रौपदीके सदृश विश्वासपूर्ण हृदयसे उन्हें पुकारनेवालोंकी कमी हो गयी है। यदि दु:ख-सागरसे सहज ही पार उतरना है तो विश्वास करके अनन्यभावसे भगवान्को पुकारना चाहिये। भारतके हिन्दुओंकी यह श्रद्धा जिस दिनसे घटने लगी, जबसे उनकी प्रार्थनाकी यह ध्वनि क्षीण हो गयी, तभीसे उनपर दु:ख आने लगे और तभीसे वे सन्मार्ग और सुखके सुपथसे भ्रष्ट हो गये। अब फिर श्रद्धा-विश्वासके साथ भगवान्को पुकारिये। देखिये, आपके इहलौकिक दु:ख दूर होते हैं या नहीं और देखिये आपको भगवान्की अमृतमयी अनुकम्पासे उनके दुर्लभ चरणारविन्दकी प्राप्ति सहज ही होती है या नहीं!

सत्यका स्वरूप

[श्रीभरत-प्रसंग]

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी महाराज)

प्राय: सत्यको बहुत छिछले अर्थोंमें लिया जाता है। हम अधिकतर वाणीके सत्यको ही सत्य मानते हैं। हम जो नेत्रोंसे देखते हैं, उसे वाणीद्वारा व्यक्त कर देना ही सत्य मानते हैं, हृदयमें सत्य हुए बिना वाणीका सत्य केवल अधूरा ही सत्य है।

कैकेयीजीके दो वरोंको पूरा करनेके लिये महाराज दशरथने बाध्य होकर श्रीरामको चौदह वर्षका वनवास एवं भरतजीको राज्य देनेके जो वचन कहे—वह सत्य केवल उनकी वाणीका ही सत्य था, उनके हृदयमें बसा हुआ सत्य नहीं था। मानसमें वर्णन आता है—जब महाराज दशरथके निधनका समाचार पाकर भरतजी ननिहालसे लौटे, तो गुरु वसिष्ठको पता चला कि कैकेयीने अयोध्याका जो राज्य अपने पुत्र भरतके लिये माँगा और श्रीरामको वनवासी बना दिया, श्रीभरत उस राज्यको लेना नहीं चाहते। तब गुरु वसिष्ठ भरतके समक्ष एक समझौतेका प्रस्ताव रखते हैं, कहते हैं—भरत! देखो, तुम्हारे पिताजीने राज्य तुम्हें दिया है। अत: तुम्हें पिताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये और जब राम आ जायँ तो राज्य उन्हें सौंप देना, पर अभी तो ले लो। कितना बढ़िया समझौता सुझाया गुरु वसिष्ठने! संसार भी बच जाय और भगवान् भी मिल जायँ! पर श्रीभरत कितने जागरूक हैं। उनकी दृष्टिमें यह समझौता न्याय और अन्यायमें है—वह समन्वय नहीं है। समन्वय अच्छा है और समझौता बुरा। जीवनमें समन्वय होना चाहिये, समझौता नहीं। समन्वय ज्ञान-भक्ति-कर्मका होता है, पाप-पुण्यका नहीं। पर हम लोग हैं, जो जीवनमें पाप और पुण्यका समन्वय करते रहते हैं। लोगोंने भी श्रीभरतसे ऐसे ही समन्वयका आग्रह किया—जो गुरु वसिष्ठने कहा था, उसे दुहराया। पर भरत जानते हैं कि वे लोग समन्वयका नहीं, समझौतेका आग्रह कर रहे हैं। वे जानते हैं कि पिताजीने उन्हें राज्य किस परिस्थितिमें दिया है। यह तो वैसे ही है जैसे कोई किसीके सीनेपर पिस्तौल तानकर खड़ा हो जाय और कहे कि जो हम कहें, वैसा कहते जाओ! अब यह जो व्यक्ति बेचारा कह रहा है, वह स्वयं कह रहा है या पिस्तौल कहलवा रही है? उसका बस चले तो वह सब कुछ न कहे, जो उससे कहलवाया जा रहा है, वह तो बस अपनी बात कहे। इसी प्रकार भरतजी जानते हैं कि पिताजीने वह सब नहीं कहा, जिसका उल्लेख गुरु वसिष्ठ करते हैं, अपितु कैकेयी अम्बाने अन्यायपूर्ण ढंगसे पिताको यह कहनेको बाध्य किया कि राज्य भरतको देता हूँ। हमारे पिताजी हृदयसे चाहते थे कि श्रीरामका राज्य हो। अत: पिताजीकी इच्छाकी पूर्ति मेरे राज्य-ग्रहणसे नहीं होगी, बल्कि श्रीरामको राज्य देनेसे होगी।

भरतका मन्तव्य यह था कि यह जो पिताजीके सत्यकी बात कही जा रही है, वह सत्य वह नहीं था, जो उनकी वाणीसे प्रकट हुआ था, बल्कि वह तो उनके हृदयमें था।

वे तो भगवान् रामको ही अयोध्याके राज्यका उत्तराधिकारी समझते हैं और अपने पिताके निर्णयकी निन्दा करते हैं। यदि भगवान् राम चाहते तो अन्यायके विरुद्ध संघर्ष कर सकते थे। आजकल प्रत्येक व्यक्ति अन्यायके खिलाफ लड़नेको तैयार है। घरमें, परिवारमें, नगरमें, जिसे देखो वही कहता है—हम अन्याय नहीं सहेंगे। आश्चर्य तो यह है कि इतने लोग अन्यायके विरुद्ध लड़ रहे हैं, फिर भी अन्याय बढ़ता ही जा रहा है। अन्याय मानो रक्तबीज हो गया है, जो काटनेपर और भी बढ़ता जाता है। वैसे तो भगवान् राम भी कह सकते थे कि कैकेयीजी मोहमें आसक्त होकर मेरे प्रति अन्याय कर रही हैं और मैं इस अन्यायको नहीं सहूँगा। पर भगवान् राम ऐसा नहीं करते, वे तुरंत वनको चले जाते हैं। उनको इसमें कोई अन्याय नहीं दीखता। हमारी दृष्टिमें न्याय वह है, जिससे हमारा स्वार्थ पूरा होता है। हम जो चाहते हैं, उसे न्याय मानते हैं और सामनेवाला जो करता है, उसे अन्याय।

पर भगवान् राम और श्रीभरतके लिये न्याय-अन्यायकी यह परिभाषा बदल जाती है। भरत यह मानते हैं कि पिताजीकी बुद्धि भले ही जीवनभर अच्छी रही हो, पर उन्होंने श्रीरामसे राज्य लेकर मुझे देनेका जो निर्णय किया इससे तो यही लगता है कि ***'मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।'*** (२।१६२।३) उनकी मति मृत्युके समय मारी गयी थी। श्रीभरतका तर्क यह है कि पिताजीने कैकेयी-अम्बाको दो वरदान तब दिये थे, जब माँने एक समय युद्धक्षेत्रमें पिताजीके रथके पहियेको गिरनेसे रोक लिया था। यदि रथका पहिया गिर जाता तो पिताजी गिर जाते और उन्हें चोट लग जाती। तात्पर्य यह है कि पिताजीने माँको वरदान देनेका वचन इसलिये दिया था कि उन्होंने पिताजीके शरीरकी रक्षा की थी। पर अब जब माँ उनके प्राण लेनेपर तुल गयी, तब शरीर-रक्षाके लिये दिया गया पुरस्कार अपने-आपमें व्यर्थ हो गया; क्योंकि पुरस्कारका आधार ही खत्म हो गया। जैसे किसी व्यक्तिकी ईमानदारीपर पुरस्कार घोषित हुआ और कल वह यदि बेईमानी करे और अपना घोषित पुरस्कार माँगना चाहे, तो उसे ईमानदारीका पुरस्कार कैसे मिल पायेगा? ऐसे ही कैकेयी अम्बा एक दिन महाराज दशरथके प्राणोंकी रक्षाका वरदान पानेकी अधिकारिणी हुई थीं, पर आज वे ही श्रीरामको वन भेज महाराज दशरथके मानो प्राण लेनेपर तुली हुई हैं; क्योंकि महाराज दशरथ स्वयं कहते हैं—***'राम बिरहँ जनि मारसि मोही।'*** (२।३४।७) ऐसी दशामें भरतजीकी दृष्टिमें कैकेयी अम्बाके वरदान प्राप्त करनेकी पात्रता नहीं रह गयी। अतः महाराज दशरथने यदि कैकेयीजीकी माँगके लिये 'नाही' कर दिया होता तो वह भरतकी दृष्टिमें महाराज दशरथका उचित निर्णय होता, पर चूँकि उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसलिये भरत मानते हैं कि मृत्युके समय पिताजीकी मति मारी गयी।

अगर कोई भरतसे तर्क करे कि भाई, आखिर वचन तो वचन है और एक बार जब महाराज दशरथने कैकेयीजीको वचन दे दिया तो उसकी रक्षा करना उनका धर्म है? उसपर श्रीभरतका तर्क यह है कि ठीक है, महाराज श्रीदशरथने कैकेयी अम्बाको वचन दिया, पर उन्होंने एक दूसरा वचन भी तो दिया। पहले वचनके समय तो पिताजीके सामने केवल कैकेयी अम्बा ही थीं, पर इस दूसरे वचनको जिसमें उन्होंने श्रीरामको राज्य देनेकी घोषणा की, उन्होंने सारी प्रजाके सामने घोषित किया। उन्होंने गुरु वसिष्ठसे कहा कि आप जाकर सूचना दे दीजिये कि कल रामका राज्याभिषेक होनेवाला है तो कैकेयी अम्बाके सामने दिया वचन वचन हो गया और इतने लोगोंके सामने दिया वचन वचन नहीं हुआ? यह कैसा न्याय है? कैसा सत्य है? जब कैकेयी अम्बाने वरदान माँगने चाहे तो पिताजीको कह देना था कि मैंने राज्य देनेका वचन पहले ही श्रीरामको दे दिया है, अब तुम और कोई दूसरी चीज माँगना चाहो तो माँग लो। यदि पिताजीने ऐसा किया होता, तब सचमुच सत्यकी रक्षा होती। लगता है कि पिताजी न तो अपने सत्यकी रक्षाके लिये कोई निर्णय ले पाये, न न्यायके लिये ही। यह श्रीभरतकी दृष्टि है, उनकी व्याख्या है।

भगवान् राम भी ऐसी ही व्याख्या कर सकते थे; क्योंकि यह व्याख्या सटीक और युक्तियुक्त है, पर वे वैसा नहीं करते, अपितु अपने पिताद्वारा दिये गये वचनको न्यायसंगत बतलाते हैं। वे कहते भी हैं कि मेरे पिता इतने महान् थे कि—***'राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी।'*** (२।२६४।६) उन्होंने मुझे त्यागकर अपने सत्यकी रक्षा की। भगवान् रामको अपने पिताके कृत्यमें कोई अन्याय नहीं दीखता। उनका तर्क यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसीसे ऋण लेता है और बादमें वह ऋणी व्यक्ति कहींसे बहुत-सा धन पा लेता है तो उसका पहला कर्तव्य यह होगा कि वह पुराना ऋण चुका दे और जो धन बचे, उसे अपने काममें ले। यदि ऋणी व्यक्ति धन पानेके बावजूद ऋण न चुकाये तो ऋण देनेवालेको उससे यह कहनेका पूरा अधिकार है कि आप पहले हमारा ऋण चुकाइये। इसी प्रकार पिताजी मेरी माँके ऋणी थे और बिना माँका ऋण चुकाये वे मुझे राज्य देना चाहते थे। अतः माँको पूरा अधिकार है उन्हें रोकनेका और यह कहनेका कि आपको राज्य देनेका अधिकार नहीं है, पहले आप मेरा ऋण चुकाइये, फिर बादमें दूसरेको दीजिये। अतः यदि पिताजीने माँको ऐसा वचन दिया है तो उन्होंने कोई अन्याय नहीं किया है, न ही कैकेयी अम्बाने कोई भूल की है। यह

भगवान् रामका दृष्टिकोण है। वे न्याय उसे मानते हैं, जिससे भरतको राज्य मिले और अपना स्वार्थ-त्याग हो और भरत भी न्याय उसे मानते हैं, जिससे श्रीरामको राज्य मिले।

श्रीराम और श्रीभरत दोनोंकी परिभाषा वह है, जिससे स्वयंके हिस्सेमें भोगके बदले त्याग पड़े, जिसमें संघर्षके स्थानपर एक-दूसरेको देनेकी वृत्ति हो। यह रामराज्य है। जहाँ उचित लेन-देनकी वृत्ति है, वह धर्मराज्य है और जहाँ परस्पर देनेकी वृत्ति है, वह रामराज्य। श्रीराम और श्रीभरत अपने चरित्रके माध्यमसे यही दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

सत्संगका प्रभाव

(श्रीभागवतप्रसादजी पाण्डेय)

सत्का श्रवण, कीर्तन, भजन, मनन, उसपर विश्वास, श्रद्धा या उसके अनुसार चलना सत्संग कहलाता है। सत्—शाश्वत, नित्य, प्रदीप्त, उत्प्रेरक, शिवम् एवं सुन्दरम् होता है।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्—आह! कितना आनन्ददायक वाक्य है? इस वाक्य के श्रवणमात्रसे हर्षातिरेकसे मन भर उठता है और यदि सत्के साथ या पास रहा जाय तो कहना ही क्या! सत्यकी अनुभूति या इसका दर्शन जीवनका परम लक्ष्य होना चाहिये।

सत्संगका प्रभाव मानव ही नहीं पशुपर भी पड़ता है। प्रस्तुत कथासे यह बात उजागर होती है—

किसी राजाके पास गजमौलि नामका एक हाथी था। बहुत ही भोला-भाला, अपनी सूँड़से बच्चोंको पीठपर बैठा लेता था। जानवर होते हुए भी वह बड़ा बुद्धिमान् था, कभी किसीको उसने हानि नहीं पहुँचायी। अचानक उस हाथीके व्यवहारमें बदलाव आ जाता है। कई जानवरोंको उसने पटक-पटककर मार दिया एवं एक राजकर्मचारीको घायल कर दिया।

हाथीके स्वभावमें परिवर्तनका कारण जाननेहेतु राजाने पण्डितोंकी एक बैठक बुलायी। राजाने पण्डितोंसे पूछा कि सीधा-सादा हाथी अचानक खूँखार क्यों हो गया? विचारणीय बिन्दुपर पण्डितोंने कहा कि महाराज! संगतसे गुण आता है। अत: हाथीके स्वभावमें परिवर्तनका कारण जाननेहेतु गजशालामें रात-भर गुप्त पहरा दिया जाय। राजाने अपने सिपाहियोंको गुप्त पहरा देनेका आदेश दिया। सिपाहियोंने आकर राजाको सूचना दी कि महाराज! आधी रातको गजशालामें चोरोंकी बैठक होती है। यहीं बैठकर वे चोरीकी योजना बनाते हैं। उनकी वार्तालाप हिंसक होती है। राजाने यह बात पण्डितों को बतायी। पण्डितोंने कहा—महाराज! गजशालाके सामने रामायण, गीताका प्रवचन कम-से-कम एक माहतक करवाया जाय। इसके अच्छे परिणाम होंगे। राजाने वैसा ही करवाया। एक माह बीतते-बीतते हाथीके स्वभावमें भारी परिवर्तन हो गया। प्रवचनके प्रभावसे खूँखार एवं हिंसक हाथी पुन: सीधा-सादा बन गया।

यहाँ यह बात उजागर होती है कि सत्के श्रवणमात्रसे उस पशुका मन, विचार पवित्र हो गया। फलत: वह हिंसकसे अहिंसक बन गया। विचार ही कर्मकी आधारशिला है। सत्संगतिसे ही सत् विचार आता है एवं सत्कर्मसे सद्भाव आता है।

प्रश्न उठता है सत् क्या है? कहाँ खोजें? उसका संग कैसे करें? जो शाश्वत, अमिट, नित्य है, वह सत् है। कहाँ खोजें? प्रश्न गम्भीर है। पूजा, जप, तप, दान, भजन, कीर्तन, सत् श्रवण सत्प्राप्ति मार्गको सुगम बनाता है। सत् दर्शनके लिये अपने भीतरकी यात्रा करनी होगी। मनको प्रभुके अंश आत्मासे जोड़ना होगा। यद्यपि सत्रूपी आत्माके हम बहुत ही निकट हैं, फिर भी इसकी खोज मृगके कस्तूरीकी भाँति बाहरी दुनियामें करते हैं। बाहरी जगत् माया है। सत् हमारे शरीरके अन्दर आत्माके रूपमें है, जिसे जान लेना ही सत्-दर्शन है—ईश्वरदर्शन है। आत्मबोधके बाद कुछ भी जानना बाकी न रहेगा। फिर मानव-जीवनके मूल उद्देश्यकी पूर्ति हो जायगी। जन्म-मरणके बन्धनसे निजात मिल जायगी। सत्-बोधहेतु ही मानव-जीवन सिर्फ एक बार मिलता है। सत्संग किये बिना यदि जीवन व्यर्थ गवाँ दिया जाय तो चौरासी लाख योनियोंमें भटकना होगा।

दु:खनाशके अमोघ उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सभी प्राणी सुख चाहते हैं और वह भी अखण्ड, पूर्ण और नित्य सुख चाहते हैं, परंतु मोहवश उसकी खोज करते हैं संसारके पदार्थोंमें, जो स्वयं अपूर्ण, खण्ड और अनित्य हैं। भगवान्‌ने उनको सुखरहित और अनित्य अथवा दु:खालय और अशाश्वत बतलाया है। सो सत्य ही है। जो वस्तु अपूर्ण, खण्ड और अनित्य होती है, वह कभी सुख नहीं दे सकती। फिर जगत्‌में जो हम सुख देखते हैं, वह क्या है? वह है भ्रान्ति। असलमें तो 'विषयोंमें सुख है,' ऐसी कल्पना ही भ्रम है। भगवान्‌ने भोगोंको दु:खयोनि बतलाया है। भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५।२२)

'अर्जुन! ये जो इन्द्रियोंके स्पर्शसे उत्पन्न भोग हैं, सब दु:खकी उत्पत्तिके स्थान हैं और आदि-अन्तवाले हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन भोगोंमें कभी प्रीति नहीं करता।'

वस्तुत: जगत्‌के सुख-दु:ख सब केवल अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर ही हैं। जहाँ अनुकूलताका बोध है, वहाँ सुख है और जहाँ प्रतिकूलताका बोध है, वहीं दु:ख है। किसी स्थिति, घटना या वस्तुमें सुख-दु:ख नहीं है। एक आदमीकी मृत्यु होती है। उसमें जिनका ममत्व है, वे प्रतिकूलताका अनुभव करके रोते हैं और जिनकी शत्रुता है, वे अनुकूलताके बोधसे हँसते हैं और आनन्द मनाते हैं। नारदजीके पूर्वजन्ममें जब वे दासीपुत्र थे और बहुत छोटी उम्रके—केवल पाँच वर्षके थे, तब उनकी आश्रयभूता एकमात्र माताको साँपने डस लिया। माता मर गयी, इसपर नारदजीको दु:ख नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि 'माता मेरे भजनमें एक प्रतिबन्धक थी। भगवान्‌ने बड़ा अनुग्रह किया, जो माताका देहान्त हो गया।' वे माताके इकलौते पुत्र थे, परंतु अनुकूलताकी भावनासे दुखी नहीं हुए। नरसी भक्तके इकलौते और अत्यन्त प्यारे जवान पुत्रकी मृत्यु हो गयी। नरसीजीने उसमें अनुकूलताका
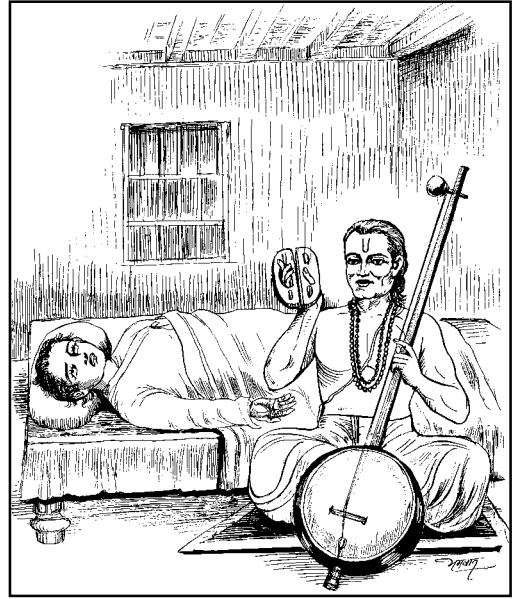
अनुभव किया और दुखी न होकर वे गाने लगे—***'भलुँ थयुँ रे भाँगी जँजाळ। सुखेथी भजशुँ श्रीगोपाळ।'*** 'अच्छा हुआ जंजाल टूट गया, अब सुखसे श्रीगोपालजीका भजन करूँगा।' आजादीसे पहलेकी बात है। कलकत्तेके 'अलीपुर बम केस' में जिसमें श्रीअरविन्द तथा उनके भाई श्रीवारीन्द्रकुमार घोष आदि अभियुक्त थे। नरेन्द्र गोस्वामी नामक एक युवक सरकारी गवाह बन गया था। उसको जेलमें ही एक दूसरे अभियुक्त श्रीकन्हाईलाल दत्तने मार डाला। कन्हाईलालको फाँसीकी सजा हुई। पर उसको अपने इस कार्यपर इतना अधिक सन्तोष और आनन्द था कि फाँसीकी सजा सुनायी जाने और फाँसी होनेके बीचके दो-तीन सप्ताहके समयमें ही उसका लगभग अठारह पौंड वजन बढ़ गया। कहाँ तो मौतके नामसे खून सूख जाता है, कहाँ मृत्युकी तिथि निश्चित हो जानेपर भी खून बढ़ गया। गोस्वामीको मारना पाप था या पुण्य, यह पृथक् प्रश्न है। पर कन्हाईलालने अपनी इस मृत्युमें इतनी अधिक विलक्षण अनुकूलताका

बोध किया और इतना अधिक सुखका अनुभव किया कि जिसने उसका इतना खून बढ़ा दिया। अतएव किसी घटनामें सुख-दुःख नहीं है। वह तो अनुकूलता और प्रतिकूलताके भावमें ही है।

एक ध्यानका अभ्यास करनेवाला साधक कोठरी बन्द करके बैठता है और कहता है कि 'बाहरसे ताला लगा दिया जाय। तीन घण्टे कोई खोले नहीं।' वह अन्दर बैठकर मनको रोकने और इष्टका ध्यान करनेकी कोशिश करता है। यद्यपि नया साधक होनेसे उसका मन टिकता नहीं, पर वह इसमें सुखका अनुभव करता है और उसी कोठरीके बगलकी दूसरी कोठरीमें एक आदमीको उसकी इच्छाके विरुद्ध बन्द कर दिया जाता है। वह बड़ा दुखी होता है और कहता है कि 'तुरंत मुझे बाहर निकाल दिया जाय।' बन्द करनेवालोंको वह दुर्वचन कहता है, शाप देता है। दोनोंकी बाहरी स्थिति बिल्कुल एक-सी है। दोनों ही एक-सी जगह बन्द हैं। दोनोंके ही मन चंचल हैं। पर एक अनुकूलताका बोध करता है, दूसरा प्रतिकूलताका। इसीके अनुसार वे दोनों सुख-दुःखका भी पृथक्-पृथक् अनुभव करते हैं।

एक आदमी अपने विपुल धनैश्वर्यका स्वेच्छापूर्वक त्याग करके संन्यास ग्रहण करता है और दूसरेका धन छीनकर उसे वैरी लोग घरसे निकाल देते हैं। दोनों समान धनहीन हैं। पर पहला प्रसन्न है, दूसरा दुखी है। इसका कारण वही अनुकूलता-प्रतिकूलताका बोध है। इससे सिद्ध है कि यहाँके सुख-दुःख अनुकूल-प्रतिकूलभावमें ही हैं। एक भूखा आदमी है, बढ़िया-बढ़िया भोजन-पदार्थ बने हैं, वह खानेको लालायित है। खाने बैठता है, बड़ा स्वाद, बड़ा सुख मिलता है। भर पेट खा लिया, खूब अघा गया। अब वही पदार्थ यदि कोई उसे जबर्दस्ती खिलाना चाहता है तो उसे गुस्सा आ जाता है। वह उद्विग्न हो जाता है। पहले अनुकूलभाव था, तब सुख मिला। प्रतिकूल होते ही दुःख हो गया। अतः सुख-दुःख वस्तुमें नहीं हैं।

यह भी निश्चित है कि यहाँकी प्रत्येक अनुकूलता अनेकों प्रकारकी प्रतिकूलताओंको साथ लेकर आती है। एक अभावकी पूर्ति दसों नये अभावोंकी उत्पत्ति करनेवाली होती है। यहाँकी वस्तुमात्र ही—स्थितिमात्र ही अपूर्ण, अनित्य, क्षणभंगुर, वियोगशील और किसी अन्य वस्तु या स्थितिसे निम्न स्तरकी है। जहाँ यह परिस्थिति है वहाँ प्रतिकूलता रहेगी ही; और प्रतिकूलता रहेगी तो दुःख भी रहेगा ही। अतः कोई यह चाहे कि मैं जगत्में सारी परिस्थितियोंको सदा अपने अनुकूल बना लूँगा और परम सुखी हो जाऊँगा तो यह सर्वथा असम्भव है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। विचारके द्वारा प्रत्येक प्रतिकूलताको उपर्युक्त नारदजी और नरसीजीकी भाँति अनुकूलतामें परिणत कर लेना पड़ेगा, तभी सुख होगा और ऐसा करना मनुष्यके अपने हाथकी बात है। स्वरूपतः बाह्य परिस्थितिको बदल देना तो बहुत ही कठिन है, निश्चित प्रारब्ध होनेपर तो असम्भव-सा ही है; परंतु विचारके द्वारा दुःखको सुखरूपमें परिणत करके सुखी हो जाना सहज है और अपने अधिकारमें है। इसके कई तरीके हैं, जो सभी सत्यके स्वरूप हैं।

१. वेदान्तकी दृष्टिसे जगत् स्वप्नवत् है। मायासे ही यह सत्य भास रहा है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।

(१५।३)

'इसका स्वरूप जैसा दीखता है, वैसा मिलता नहीं और इसका न आदि है, न अन्त है और न इसकी अच्छी तरहसे स्थिति ही है।' सिनेमा देख रहे हैं। नाना प्रकारके दृश्य दिखायी दे रहे हैं। आवाज सुनायी पड़ रही है, परंतु कोई चाहे कि इन देखी हुई वस्तुओंको पर्देके पास जाकर मैं ले लूँ तो उसे सर्वथा निराश होना पड़ता है। वहाँ सिवा सादे पर्देके और कुछ है ही नहीं। अथवा जैसे स्वप्नकी सृष्टिके पदार्थ और वहाँकी घटनाएँ जागनेपर नहीं मिलतीं, पर जबतक स्वप्न है, तबतक यह पता नहीं लगता कि यह स्वप्नकी सृष्टि कबसे बनी है और यह कबतक रहेगी। वहाँ तो यह नित्य ही मालूम होती है। पर सचमुच उसकी वहाँ कुछ भी प्रतिष्ठा—स्थिति नहीं है। स्वप्न टूटा कि कुछ नहीं। अतएव जगत्के समस्त

सुख-दु:ख स्वप्नकी सृष्टिके सुख-दु:खोंकी भाँति असत् हैं, जागनेपर जैसे स्वप्नके देखे हुए पदार्थोंकी सत्ता नहीं रहती, वैसे ही इनकी भी सत्ता नहीं है, इसलिये इन घटनाओंको लेकर सुखी-दुखी होना मूर्खता है। एक ही अखण्ड परिपूर्ण परमात्मसत्ता है, वह नित्य सत्य सच्चिदानन्दघन है। उसमें न जन्म है न मृत्यु, न सुख है न दु:ख, न लाभ है न हानि। वह सदा सम, एकरस और कूटस्थ है। इस प्रकारके विचारसे दु:खका नाश हो जाता है। संसारकी स्थिति कुछ भी हो इस प्रकारके निश्चयवाले पुरुषको सुख-दु:ख कभी नहीं होता। श्रीगीतामें कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(६। २२)

'जिस लाभको प्राप्त करके उससे अधिक कोई दूसरा लाभ नहीं मानता और जिसमें स्थित होकर वह बड़े भारी दु:खसे भी विचलित नहीं होता।'

वह निरतिशय आत्यन्तिक आनन्दका अनुभव करता है। आनन्दरूप ही हो जाता है। फिर उसके लिये दु:ख रहता ही नहीं।

ऐसी स्थिति न हो, तबतक विचारपूर्वक ऐसी धारणा करे। इस धारणासे ही दु:खका नाश हो जाता है।

२. जगत्में जीवोंके लिये फलरूपसे जो कुछ भी प्राप्त होता है, सब सर्वशक्तिमान् परमसुहृद् भगवान्के नियन्त्रणमें और उनके विधानसे होता है। मंगलमय प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। देखनेमें चाहे कितना ही भयंकर हो, पर वास्तवमें वह कल्याणमय ही है। निपुण डॉक्टर जहरीले फोड़ेका ऑपरेशन करते हैं। छुरियोंसे अंगको काटते हैं। दर्द भी होता है। पर डॉक्टर यह क्रूर कार्य करते हैं रोगीके मंगलके लिये तथा रोगी यदि विश्वासी और समझदार है तो वह इस निष्ठुर पीड़ादायक कर्ममें भी डॉक्टरकी दया मानकर प्रसन्न होता है और उसका कृतज्ञ होता है। इसी प्रकार हमारे परमसुहृद् मंगलमय भगवान् भी कभी-कभी हमारे मंगलके लिये ऑपरेशन किया करते हैं। इस बातपर हमें विश्वास हो जाय तो फिर दु:ख रहेगा ही नहीं। छोटे बच्चेको माता रगड़-रगड़कर नहलाती है, बच्चा रोता है, पर माता उसके शरीरका मैल उतारकर उसे स्वच्छ, पवित्र, निर्मल बनाकर नये कपड़े पहनाने और सजानेके लिये ही यह आयोजन करती है। इसी प्रकार भगवान् भी हमें निर्मल और पवित्र बनानेके लिये पापोंका फल—कष्ट भुगताया करते हैं। इसमें भी उनका वात्सल्य और कारुण्य भरा रहता है। इस दृष्टिसे यदि हम विश्वासपूर्वक विचार करें तो फिर दु:ख नामक कोई वस्तु नहीं रह जाती और हम हर-हालतमें भगवान्के मंगलविधानका दर्शन करके भगवान्के मंगलमय करकमलका स्पर्श पाकर आनन्दमुग्ध रह सकते हैं।

३. जगत्में वास्तवमें दो ही तत्त्व हैं—भगवान् और भगवान्की लीला। 'जो कुछ है, सब भगवान् हैं,' और 'जो कुछ हो रहा है, सब भगवान्की लीला हो रही है।' एवं लीलामय और लीलामें वैसे ही अभेद है, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें अथवा सूर्य और सूर्यके प्रकाशमें। अत: हमारे साथ जो कुछ हो रहा है, सब हमारे प्रियतम भगवान्की लीला ही हो रही है। इस लीलाका संस्पर्श वस्तुत: लीलामय भगवान्का ही संस्पर्श है। विश्वासपूर्वक इस प्रकारका भाव हो जानेपर दु:खका सर्वथा अभाव हो जाता है। क्षण-क्षणमें प्रत्येक सुख-दु:खसंज्ञक भोगोंमें लीलाविहारी भगवान्का मंगलमय स्पर्श प्राप्त होता रहता है, जिससे नित्य नव-नव आनन्दरसकी धारा बहती रहती है।

ये तीनों ही बातें सिद्धान्तत: सत्य हैं। जगत् स्वप्नवत् है—केवल ब्रह्म ही व्याप्त है। जगत्में सब कुछ मंगलमय भगवान्के मंगल विधानसे मंगल ही हो रहा है और जगत्में भगवान् ही अपने-आपसे आप ही खेल रहे हैं। तीनोंका ही तात्त्विक स्वरूप एक ही है। यह वस्तुत: सत्यको सत्यमें देखना है, जो मानव-जीवनका परम कर्तव्य है। इसीका फल भगवत्प्राप्ति या पूर्ण सुखरूप मोक्ष है।

इस प्रकार अशेष दु:खोंसे छूटकर मनुष्य भगवत्कृपासे अपनी इसी आयुमें अखण्ड और पूर्ण सुखकी प्राप्ति कर सकता है। इच्छा, विश्वास और तत्परता होनी चाहिये।

आध्यात्मिक जीवनकी सफलताका उपाय

(ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी श्रीदयानन्द 'गिरि' जी महाराज)

मनुष्य जन्मसे ही अपने जीवनको परिवारमें या किसी एक समाजमें पाता है। उसीके नियम या मर्यादाएँ उसे जन्मभर बाँधे रखती हैं। वह उनके अतिरिक्त अपनी बुद्धिसे तो परलोकके बारेमें बहुत ही कम समझ रखता है, परंतु उसे चाहिये कि वह धार्मिक सत्संगद्वारा या धर्मग्रन्थोंको पढ़कर तथा उनमें श्रद्धा रखकर परलोकके सम्बन्धमें भी कुछ जाने तथा मृत्युके पश्चात् भी उत्तम गति पानेके लिये विचार करे और कठिनता पड़नेपर तदनुसार आचरण करनेरूपी तप भी करे तथा अपने सांसारिक मिथ्या सुखोंको भी परलोकके भयसे विचारद्वारा ही ग्रहण करनेका धर्म रखे। अस्तु, यहाँ केवल इतना ही सूचित करना है कि मनुष्य चाहे अपनी बाह्य या सांसारिक बुद्धिद्वारा परलोक या मृत्युके पश्चात्‌की बातों या सत्यको भले ही न समझ सके, परंतु सत्य यह है कि ध्यानकी सूक्ष्मता (बारीकी)-तक पहुँचे हुए ऋषियोंके ज्ञानके अनुसार किसी भी जीवका अत्यन्त नाश कभी भी नहीं होता। वैसे तो संसारकी किसी भी वस्तुके अत्यन्त नाश—'कभी भी न रहने'के रूपमें अत्यन्त अभावको आजकलका कोई वैज्ञानिक भी माननेको तैयार नहीं। वस्तुतः जिसको हम किसीका नाश होना कहते हैं—वह केवल उस नाशवाली वस्तुकी अवस्थाका परिवर्तन (बदलना)-मात्र ही है, अत्यन्त (बिलकुल) नाश नहीं है। उदाहरणके लिये घट (घड़ा) फूटा; ठिकरियाँ बनीं। ठिकरियाँ चूर-चूर हुईं, परमाणु या अत्यन्त छोटे कण बने, यदि ये कण या परमाणु भी फूटें तो एक व्यापक शक्ति, जिससे कि ये सब बने हुए थे, प्रकट होती है। उसे चाहे शास्त्रोंके ऋषि मायाका नाम दें या प्रकृतिकी सूक्ष्म अवस्थाका, परंतु वस्तु उस अपने स्थूल घटरूपसे बदलते-बदलते यहाँतक पहुँची है। पुनः घटरूपमें पहुँचनेकी योग्यता भी उसमें होती है। आधुनिक वैज्ञानिक इस सत्यको कोई दूसरा नाम भले ही दे दें, परंतु यह सत्य या अन्तिम तत्त्व अपनेमें सब कुछ है और सबको सँभाले बैठा है। शास्त्रोंमें ऋषियोंने इसी सत्यको परमेश्वरकी माया या प्रकृति कहा है।

अब यहाँ धर्मके प्रेमीको तो केवल इतना ही समझना है कि जब किसी वस्तुतकका अत्यन्त नाश या विनाश नहीं होता तो आत्माका भी विनाश मृत्यु हो जानेपर कैसे हो पायेगा? इस आत्माके बारेमें सत्यको खोजनेवालोंने और भी युक्ति दर्शायी है कि जैसे सोया हुआ प्राणी अपने शरीर या इस संसारके बारेमें कुछ भी न समझनेपर भी निद्रामें पहुँचनेपर वहाँ एक दूसरा शरीर धारण कर लेता है। वह शरीर इस सोये शरीरसे बिलकुल भिन्न है। इस संसार, परिवार या समाजके सब जीवोंकी दृष्टिमें वह सोये हुए मुर्देके समान दीख रहा है। उस अवस्थामें वह यहाँके प्राणियोंके वृत्तान्त या भावोंको बिलकुल ही नहीं समझता, परंतु निद्राके आगोशमें पड़ा हुआ इसी शरीरमें बसनेवाला आत्मा या जीव किसी दूसरी स्वप्नकी धरती या दूसरे आकाशमें विचरता हुआ, वहींके दूसरे शरीरमें सब प्रकारकी बातोंको समझता हुआ, वहाँ कई-एक कर्मोंमें संलग्न रहता है। यह सब आत्मारामकी कथा है। इस संसारमें होते हुए भी वह केवल निद्रामात्रको अपनाकर यहाँ तो मृतककी भाँति निश्चेष्ट पड़ा है और स्वप्नके संसारमें अपने-आपको कई-एक प्रकारके दुःख-सुखकी उलझनोंमें पड़ा हुआ देखता है। यहाँ इतना ही समझना है कि निद्रा यदि इस आत्माको अपने वशमें करके ज्ञानशून्य नहीं कर सकी तो पुनः मृत्यु भी, जो कि एक निद्राके ही समान है, कैसे इसे अपने वशमें करके इस आत्माके ज्ञानके दीपकको बुझाकर इसका नाश कर सकेगी? इसी आत्माके बारेमें इस बातको भी ध्यानमें रखना पड़ेगा कि इसीके साथ एक ऐसी रचनेवाली शक्ति भी रहती है जो कि जीवके अन्तरमें पड़े कर्मों या संस्कारोंके अनुसार धरती, आकाश तथा प्राणियोंको रचकर जीवको कई-एक अवस्थाओंका अनुभव करवाती है। यह हमने स्वप्नके संसारमें देखा है। स्वप्न इसी सत्यका प्रमाण है। इस शक्तिका नाम भले कुछ भी रखा जाय; परमात्मा,

ईश्वर, नियति या अन्य भी कोई; परंतु जो यह सत्य है, उसका निषेध नहीं बन पाता, परंतु इतना ध्यानमें रखना होगा कि ये सब सत्य उसी सत्पात्र, जिज्ञासु, उद्योगी धार्मिक जनको सूझेंगे, जो बाहरकी जीवनचर्याको सही रखकर ध्यानको उन्नत करे और बाहरसे सांसारिक उलझनसे अवकाश प्राप्त करके इस सत्यकी खोज करनेमें अपना जीवन लगाये। इस सबसे आध्यात्मिक जीवन उन्नत होता जायगा और वह जानेगा कि यह आत्मा जो अनेक जन्मोंसे नाना प्रकारसे ज्ञान पाता हुआ कई-एक अवस्थाओंसे गुजरता है, उन्हें लाँघता है, सबमें अपना-आपा देखता है, वह मृत्युसे अत्यन्त नष्ट या विनष्ट न होकर जैसी सामग्री अपने साथ ले जाता है, वैसे ही संसारको वह आगे पुनः भी रच लेता है और वहाँ सुख-दुःखका अनुभव करता है। हाँ! यदि इस आत्मामें यही सत्य-ज्ञान बढ़ते-बढ़ते, उन्नत या विकास-भावको प्राप्त होते-होते निर्विरोध बाहर जीवन धारण करनेतकका सामर्थ्य प्राप्त कर ले तथा संसारके सब प्रभावोंसे मुक्त रहे तो यही आत्मा अपने शुद्ध, पवित्र, परम सूक्ष्म, नित्य आनन्दरूपमें सदाके लिये ठिकाना भी पाता है। यही बस यही! आध्यात्मिक जीवनकी पूर्णता तथा सफलता है। इस फलकी प्राप्तिसे परे कुछ शेष पानेकी इच्छा भी नहीं रहती।

सब अनर्थोंसे बचनेके लिये अर्थात् परलोकमें सद्गति पानेके निमित्त जीवनकालमें भी अपने-आपमें सब बन्धनोंसे मुक्त होकर केवल आत्मामें ही सुख, शान्ति और तृप्ति पानेके हेतु केवल एक सधा हुआ आध्यात्मिक जीवन ही एक सहारा है।

[प्रेषक—प्रो० श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]

जीवन कैसे जिया जाय?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात एक बार भ्रमण करते हुए एक शहरमें पहुँचे। वहाँ उनकी एक वृद्ध व्यक्तिसे भेंट हुई। दोनों काफी घुल-मिल गये। सुकरातने उनके व्यक्तिगत जीवनमें काफी रुचि ली, काफी खुलकर बातें कीं।

सुकरातने सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा 'आपका विगत जीवन तो बड़े शानदार ढंगसे बीता है, पर इस वृद्धावस्थामें आपको कौन-कौनसे पापड़ बेलने पड़ रहे हैं, यह तो बताइये?'

वृद्ध किंचित् मुसकराया—'मैं अपना पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने समर्थ पुत्रोंको देकर [और इन सबको सर्व सामर्थ्यवान् प्रभुको समर्पित करके] निश्चिन्त हूँ। वे जो कहते हैं कर देता हूँ, जो खिलाते हैं, खा लेता हूँ और अपने पौत्र-पौत्रियोंके साथ खेलता रहता हूँ। बच्चे कभी भूल करते हैं तब भी चुप रहता हूँ। मैं उनके किसी कार्यमें बाधक नहीं बनता। पर जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं तो मैं अपनी जीवनके सारे अनुभवोंको उनके सामने रखकर की हुई भूलसे उत्पन्न दुष्परिणामोंकी ओरसे सचेत कर देता हूँ। वे मेरी सलाहपर कितना चलते हैं, यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नहीं है। वे मेरे निर्देशोंपर चलें ही, यह मेरा आग्रह नहीं। परामर्श देनेके बाद भी यदि वे भूल करते हैं तो चिन्तित नहीं होता। उसपर भी वे पुनः मेरे पास आते हैं तो मेरा दरवाजा सदैव उनके लिये खुला रहता है। मैं पुनः उचित सलाह देकर उन्हें विदा करता हूँ।

वृद्धकी बात सुनकर सुकरात बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि आपने इस आयुमें जीवन कैसे जिया जाय, यह बखूबी समझ लिया है।' [साधनसूत्र—प्रस्तुति : श्रीहरिमोहनजी]

साधकोंके प्रति—

[परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति कठिन नहीं]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्राय: सामान्य साधकोंकी ऐसी धारणा रहती है कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कठिन कार्य है; पर वस्तुत: वह कठिन नहीं है, हमने अपनी भ्रान्त धारणाके कारण ही उसे कठिन और अगम मान रखा है। यहाँ यह शंका की जा सकती है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी इस कठिनताकी ओर संकेत किया है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत:॥

(गीता ७। ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई ही मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।'

पर विचारपूर्वक देखें तो इस श्लोकका तात्पर्य परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें कठिनाई बतानेमें न होकर इस मार्गमें चलनेवालों (प्रवृत्त होनेवालों)-की दुर्लभता बतानेमें है। मनुष्य-देह मिलनेपर भी अधिकांश लोग इस मार्गपर पाँव नहीं रखते, अपने उद्धारका ऐसा स्वर्ण-अवसर मिलनेपर भी वे भोगोंमें आसक्त रहते हैं। यह नहीं सोचते कि हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका परिणाम क्या होगा? वे अंधाधुंध एक-दूसरेका अनुकरण करते हुए दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त श्लोकद्वारा भगवान्ने परमात्मतत्त्व-प्राप्तिके लिये सच्ची लगनसे प्रयास करनेवाले मनुष्योंकी कमी बतलायी है, न कि उस तत्त्वकी प्राप्तिमें कठिनता। हमें मनुष्य-देह प्रदान करनेका उद्देश्य ही यही है कि हम अच्छा संग प्राप्तकर सद्विचारोंका संग्रह करें, जिनसे जन्म-जन्मान्तरके कुसंस्कार नष्ट होकर हमें सुगमतापूर्वक परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय।

भगवान् तो परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें सुगमता बतलाते हुए कहते हैं—

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:॥

(गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमका स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

ऐसी सुलभता होते हुए भी परमात्म-तत्त्वको जाननेवाले बहुत कम हैं, इसका कारण क्या है?

इसका मुख्य कारण है कि अधिकांश मनुष्य तात्कालिक (प्रत्यक्ष दीखनेवाले) सुख-भोग और पदार्थ-संग्रहमें लगे रहते हैं, वे प्रत्यक्ष दिखायी न देनेवाले एवं इन्द्रियातीत ईश्वरके सम्मुख नहीं होते। यदि साधककी प्रवृत्ति परमात्म-तत्त्वकी ओर होगी तो चाहे वह दुराचारीसे भी दुराचारी क्यों न हो, उसे निश्चय ही अपने लक्ष्यकी प्राप्ति शीघ्र हो जायगी। भगवान्के वचन हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:॥

(गीता ९। ३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।'

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी कहा गया है—

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

(५। ४८। २-३)

तात्पर्य यह कि साधक दृढ़ निश्चय करके अपनी प्रवृत्तिको परमात्म-तत्त्वकी ओर मोड़ ले तो उसके लिये परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं, अत्यन्त सुलभ है। परमात्म-तत्त्वकी ओर प्रवृत्ति होते ही—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

(गीता ९। ३१)

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है।'

इसी प्रकार ज्ञान-मार्गमें प्रवृत्त होनेवाला पापी-से-पापी साधक भी उसी परम शान्तिको प्राप्त करता है—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

(गीता ४। ३६)

यहाँ यह शंका हो सकती है कि पापी तो इनका अधिकारी भी नहीं हो सकता, फिर उसे ज्ञानरूपा नौका मिलना तो अत्यन्त कठिन ही होगा? परंतु भगवान्‌का अभिप्राय यह है कि पापी-से-पापी जब परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त व्याकुल होता है तो मेरी सहज कृपासे उसका निश्चय ही कल्याण हो जाता है।

अब इस बातपर विचार करें कि परमात्म-तत्त्व जब पापियों और धर्मात्माओं—सभीके लिये सुगम है, उसके सभी समानरूपसे अधिकारी हैं, तब फिर उसकी प्राप्तिमें कठिनताका आभास क्यों होता है? विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह कठिनता हमने ही मान रखी है। वास्तवमें कठिनता है नहीं, उसका आभासमात्र होता है। सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति और उनमें सुख-बुद्धिका त्याग न कर पाना ही परमात्म-तत्त्व-प्राप्तिकी उत्कण्ठामें सबसे बड़ी बाधा है। इस विषयमें एक मार्मिक बात यह समझनी चाहिये कि परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें पूर्वजन्मार्जित पाप उतने बाधक नहीं होते, जितनी कि वर्तमान जन्मकी धर्म-विरुद्ध प्रवृत्तियाँ। मनुष्यका ऐसा स्वभाव बन गया है कि वह संसारकी नश्वर वस्तुओं एवं क्रियाओंसे सुख लेना चाहता है। इसी कारण उसकी परमात्म-तत्त्वकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती, फिर उसमें अनन्यता तो होगी ही कैसे?

जो परिस्थिति आजतक थी, वह अब नहीं रही; इच्छित-अनिच्छित वस्तुएँ भी मिलीं, परंतु टिकीं नहीं। ऐसा सर्वमान्य अनुभव होते हुए भी मनुष्य मनोऽनुकूल सांसारिक परिस्थितियों और पदार्थोंके पानेकी इच्छा नहीं छोड़ता। प्रथमतः तो ऐसे मनोऽनुकूल पदार्थ मिलते नहीं, मिलते भी हैं तो ठहरते नहीं। यदि ये सांसारिक सुख और पदार्थ टिकते भी हैं तो मनुष्य स्वयं नहीं रहता। इस अकाट्य सिद्धान्तको कोई बदल नहीं सकता, फिर भी मनुष्य अपने इस अनुभवकी उपेक्षा करनेके कारण सांसारिक अभिलाषाओंको त्यागता नहीं वरन् और अधिक तेजीसे उनकी ओर दौड़ता है।

जो कुछ संसारमें प्राप्त हुआ है, उससे हमें सन्तोष होता नहीं और ये सांसारिक सामग्रियाँ अधिक-से-अधिक प्राप्त हो जायँ, ऐसी इच्छा बराबर बनी रहती है। इससे यह पता चलता है कि सांसारिक पदार्थोंसे सदाके लिये तृप्ति नहीं हो सकती, आज-तक किसीकी तृप्ति हुई भी नहीं। शास्त्रोंमें कहा गया है—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥

(श्रीमद्भा० ९। १९। १३)

'लोकमें जितने धन, धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब मिलकर भी विषयग्रस्त पुरुषके चित्तको संतुष्ट नहीं कर सकते।'

जब सांसारिक पदार्थोंसे आजतक किसीको पूर्णता नहीं मिली। न मिल सकती है और न कभी मिल ही सकेगी, तब हमें उनसे पूर्णता कैसे प्राप्त हो सकती है?

यह जीव चेतन (परमात्मा)-का अंश है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा०च०मा० ७। ११७। २)

चेतनकी भूख जड़, नाशवान् संसार और उसके पदार्थों या सुख-संग्रहसे कैसे मिटेगी? यदि परमात्माका अंश जड़ वस्तुओंकी इच्छा करेगा तो इसका अभाव

बढ़ता ही चला जायगा और सांसारिक अभावोंकी पूर्तिसे यह अभाव कभी कम न होगा। जहाँ जड़तासे सम्बन्ध होगा, वहाँ दरिद्रता बढ़ती ही चली जायगी। अंश (जीव)-को जबतक अंशी (ईश्वर)-की प्राप्ति नहीं होगी, तबतक समस्त सांसारिक वैभव प्राप्त हो जानेपर भी उसे शान्ति नहीं मिल सकेगी। जड़तासे सम्बन्ध जोड़ना अशान्तिको गले लगाना है, यह निर्विवाद सत्य है। यदि साधककी विवेक-बुद्धिमें यह बात बैठ जाय कि मैं चेतनका अंश अर्थात् चेतन हूँ और सांसारिक पदार्थ जड़ प्रकृतिके कार्य होनेके कारण जड़ हैं, इनसे मेरी तृप्ति कदापि नहीं हो सकती तो उसे परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति अत्यधिक सुगमतासे हो सकती है; क्योंकि वे (परमात्मा) नित्य प्राप्त हैं, कभी किसीसे अलग हुए ही नहीं।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(रा०च०मा० ५।४४।२)

भगवान्‌के सम्मुख होते ही करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। यह कैसी विलक्षण बात है! परमात्म-तत्त्वकी ओर उन्मुख होते ही सारी बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं।

कुछ लोगोंकी यह भ्रान्त धारणा है कि परमात्म-प्राप्तिके साधनमें लगनेसे संसारके सगे-सम्बन्धी, मित्र, बान्धव विपरीत हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌की सेवा-भक्तिमें लग जाता है, उसे संसारी लोगोंसे ही नहीं, प्रत्युत उदासीन, वैरी, मित्र, कुटुम्बी और यहाँतक कि चोर-डाकुओंसे भी सहायता मिलती है। मार्मिक बात यह है कि भगवान्‌की ओर प्रवृत्ति होनेपर साधक सबमें परमात्माका दर्शन करता है, कहीं भी उसकी आसक्ति नहीं होती, वह निर्वैर हो जाता है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा०च०मा० ७।११२ ख)

जो अनुकूलता पहले इच्छा होनेपर भी नहीं मिलती थी, वही इच्छा त्यागते ही पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। जिसे कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं होती, उसे लोग देते हैं और जो माँगता है, उसे कोई देता नहीं। लोकमें यह बात तो सबके देखनेमें आती ही है।

जो मायाको नहीं अपनाते, माया उनकी सेवा करती है और जो मायाके पीछे लगे रहते हैं, उनके हाथ वह आती नहीं। उलटा वे अपना ही नाश कर लेते हैं—

जो विषया संतन तजी ताही नर लिपटाय।
ज्यों नर डाले वमन को स्वान स्वाद सों खाय॥

त्याज्य दुर्गन्धित वमनके लिये जिस प्रकार कुत्ते आपसमें लड़ते और छीना-झपटी करते हैं, उसी प्रकार परमात्म-तत्त्वसे विमुख हुए संसारी लोग घृणास्पद एवं दुःखदायी पदार्थोंके लिये परस्पर ईर्ष्या-द्वेष आदिमें फँसकर दुखी होते रहते हैं। यदि सांसारिक पदार्थोंमें भोग और संग्रह-बुद्धिका त्याग कर दिया जाय तो सब प्रकारकी अनुकूलता होनेपर भी वह परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक नहीं बन सकेगी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है—सांसारिक पदार्थोंमें और उनकी कामनामें भी स्थायित्व नहीं है तो फिर उनसे नित्य, शुद्ध, शाश्वत और पूर्ण सुखकी प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती है? परमात्मा तो सर्वत्र हैं, सब समय हैं, सबमें हैं, सब देशमें हैं, फिर उनकी प्राप्तिमें कठिनता क्या—

घट-घट व्यापक रामजी अति नेड़ा नहीं दूर।
भजे कपट तज चित्तसे सन्मुख होइ जरूर॥

वास्तवमें इस निकटताको दूरीमें, सुगमताको कठिनतामें बदला है सांसारिक इच्छाओंने, भोगोंने, विभिन्न कामनाओंने। इनका त्याग पूरी सच्चाईसे होना चाहिये, फिर परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें कोई कठिनता नहीं रहती।

प्रभुकी पूर्वनियोजित लीला—'रामवनवास'

(डा० श्रीरमेश मंगल वाजपेयीजी)

श्रीहरि विष्णुने मनु-शतरूपाको दिये गये वरदान (*'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत'*)-को सत्य करनेके लिये तथा असुरोंके दलनार्थ ही अपने मानवावतारका संकल्प लिया और त्रेतामें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए। श्रीरामचरितमानसमें श्रीमद्भगवद्गीताके ईश्वरीय संकल्पको रेखांकित करते हुए कहा गया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८)

अर्थात् जब-जब धर्मका ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं तथा वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जिससे ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधि प्रभु भाँति-भाँतिके [दिव्य] शरीर धारणकर सज्जनोंकी पीड़ा हरते हैं। यह ईश्वरका सत्य-संकल्प हैं। इसी क्रममें अपना संकल्प सिद्ध करने हेतु श्रीहरिका रामावतार हुआ है—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(रा०च०मा० १।१२१)

अर्थात् वे असुरोंको मारकर देवताओंको स्थापित करते हैं, अपने [श्वासरूप] वेदोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं और जगत्में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका यह कारण है। एतदर्थ प्रभुने अपने वन-गमनकी योजना पहले ही बना ली थी। अध्यात्मरामायणमें उद्धृत है कि वनगमनके सम्बन्धमें प्रभु श्रीराम नारदजीसे कहते हैं—

रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम्।
चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक्॥

(अ०रामा० २।१।३८)

अर्थात् रावणका वध करनेके लिये मैं कल दण्डकारण्यको जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्ष मुनिवेष धारणकर रहूँगा। प्रभुके इस प्रयोजनकी पूर्तिमें सरस्वती देवीने सहयोग प्रदान किया। अध्यात्मरामायणके अयोध्याकाण्डमें द्वितीयसर्गके ४४ से ४६ श्लोकोंके अनुसार, इसी समय देवताओंने सरस्वतीदेवीसे आग्रह किया कि—हे देवि! तुम यत्नपूर्वक भूलोकमें अयोध्यापुरीमें जाओ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये यत्न करो। प्रथम तो तुम मन्थरामें प्रवेश करना और फिर कैकेयीमें। हे शुभे! इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना।* इसपर सरस्वतीजीने 'बहुत अच्छा' कहकर वैसा ही किया और प्रथम मन्थरामें प्रवेश किया। इस प्रसंगका श्रीरामचरितमानसमें बड़ी ही रोचक शैलीमें वर्णन किया गया है तथा देवताओंके इस कुचक्रको उनकी स्वार्थ-लिप्सा बतायी गयी है। देवता कहते हैं—

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥

(रा०च०मा० २।११)

अर्थात् हे माता! हमारी बड़ी विपत्तिको देखकर आज वही कीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वनको चले जायँ और देवताओंका सब कार्य सिद्ध हो। और तब—

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची।
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

बार-बार चरण पकड़कर देवताओंने सरस्वतीजीको

---

* एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्। गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः। मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे। तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम्॥

संकोचमें डाल दिया। तब वे यह विचारकर चलीं कि देवताओंकी बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरेका ऐश्वर्य नहीं देख सकते। तदपि रामकाजका विचार करके वे रानी कैकेयीकी मन्दबुद्धि दासी मन्थराकी बुद्धि भ्रमित कर देती हैं और वापस चली जाती हैं—

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

(रा०च०मा० २।१२)

भ्रमितमति मन्थराने रानी कैकेयीसे अनेक प्रकारके कुटिल किस्से कहकर उन्हें अन्ततः समझा ही लिया कि—

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती।
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

तुम्हारे दो वरदान राजाके पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजासे माँगकर अपनी छाती ठंढी करो। पुत्रको राज्य और रामको वनवास दो तथा सौतका सारा आनन्द तुम ले लो। होनहारवश ऐसा करनेके लिये कैकेयीके मनमें दासी मन्थराकी बातोंका विश्वास हो गया। उसने वही किया, जैसा मन्थराने समझाया। इस प्रकार ***'जसु अपजसु बिधि हाथ'***के न्यायसे रानी कैकेयीके हाथ अपयश ही लगता है, किंतु महाराजा दशरथ और रानी कैकेयी तो निमित्तमात्र हैं, और वे अपने भाग्यका भोग ही प्राप्त करते हैं। वस्तुतः श्रीरामका वनगमन पूर्वनियोजित है, उसमें राजा या कैकेयी कारण नहीं—ऐसा अध्यात्मरामायणका मत है। उक्त ग्रन्थके अयोध्याकाण्ड, पंचम सर्ग, श्लोक २४ व २५ के अनुसार—

राजा वा कैकेयी वापि नात्र कारणमण्वपि।
पूर्वेद्युर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च॥
रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं वनम्।
अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः॥

अर्थात् मुनिवर वामदेव कहते हैं—इनके (श्रीरामके) वनगमनमें राजा या कैकेयी अणुमात्र भी कारण नहीं हैं। कल ही इनसे नारदजीने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए प्रार्थना की थी। उस समय स्वयं रामने भी उनसे यही कहा था कि कल मैं वनको जाऊँगा। अतः हे भोले भाइयो! आपलोग रामके लिये कोई चिन्ता न करें।

इसीके सापेक्ष सन् १६४३ ई० का भक्त कवि लालदासप्रणीत अवध-विलास भी ध्यातव्य है। ग्रन्थमें रामजन्मसे लेकर उनके वन-गमनतककी कथाको ग्रहण किया गया है। अवध-विलासके अनुसार राम-वन-गमनकी घटना कैकेयी और रामके मध्य बनी योजनाका एक अंग थी। रावणवधके लिये नारदद्वारा प्रेरित किये जानेपर रामकी उदासी देखकर कैकेयी रामसे उसका कारण पूछती हैं। राम रावण-वधके लिये वन जानेकी बात करते हैं—

बोले राम मोहि वनचारी। राजहिं कहि कर सो हितकारी॥

रामने कहा—'हे माते!' मुझे [रावणवधहेतु] वनवासी होना है। अतः इसे राजा (दशरथ)-से कहकर मेरा हित कीजिये—रामकी इच्छा जानकर कैकेयी कहती हैं कि रामको लोककल्याणार्थ वनगमन कार्य अभीष्ट है। अतः वह इस कार्यमें सहायक होगी। राम कैकेयीको सचेत करते हैं—

मेरे बिरह पिता पुनि मरिहैं। तोहि अजस अति होइन परिहैं॥
भरत भोग तजि जोगी होई। कौसल्या दुख करिहै सोई॥
अवधपुरीके वासी जेते। ह्वै हैं सबहि उदासी तेते॥

[हे माते!] मेरे वियोगमें पिता (दशरथ)-का निधन हो जायगा। आपको अत्यन्त लोक-अपयशका भागी होना पड़ेगा, भरत राजभोगोंको त्यागकर योगी हो जायगा, माता कौसल्या दुखी होंगी, अवधपुरवासी सभी उदासीन हो जायँगे।

तथापि वन-गमनकी पूर्वनिर्धारित कल्याणकारी योजनाको कैकेयी क्रियान्वित करती हैं और राम रावण-वधहेतु वनको तदनुरूप प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार अवध-विलास ग्रन्थमें राम-वनगमनके अन्तर्गत दो तथ्य स्पष्ट उभरकर आये हैं—(१) श्रीराम वन-गमनकी जनकल्याणकारी योजना पूर्वनिर्धारित थी। (२) उक्त योजनाका क्रियान्वयन सर्वोपरि मानकर रानी कैकेयीने अनेक दुखों और मर्मान्तक लोक-अपयशको भी स्वीकार किया। इस दृष्टिकोणसे रानी कैकेयीका चरित उदात्त एवं अत्यन्त महिमापूर्ण है।

गोस्वामीजीका काशीप्रवास *

(डॉ० श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

पुण्यपुरी काशीसे प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीका अत्यन्त घनिष्ठ और अभिन्न सम्बन्ध रहा है। उनके जीवनका अधिकांश समय यहाँ रामकथाके वक्ता, साहित्यप्रणेता तथा साधकके रूपमें व्यतीत हुआ। यहाँ उन्होंने पन्द्रह वर्षतक शेष सनातनजीसे वेद-वेदांगका अध्ययन भी किया था। काशीमें ही उन्हें हनुमान्‌जीके दर्शन हुए, जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीरामके दर्शनका मार्ग प्रशस्त हुआ। यहाँके प्रह्लादघाट, असीघाट, तुलसीघाट और गोपालमन्दिरसे वे विशेषरूपसे जुड़े रहे। प्रह्लादघाटपर वे अपने मित्र पं० श्रीगंगारामजी ज्योतिषीके यहाँ रहे, असीघाटपर रहते हुए उन्होंने शरीरत्याग किया और गोपालमन्दिरकी वाटिका-गुफामें रहकर 'विनय-पत्रिका' की रचना की। यों बारह हनुमान्-मन्दिरोंकी स्थापनाके कारण उनका सम्बन्ध अन्य मुहल्लों या क्षेत्रोंसे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। काशीमें श्रीरामका चरित्र रामलीलाके माध्यमसे जन-जनतक पहुँचानेका श्रेय तुलसीदासजीको ही है। यहाँ श्रीकृष्ण और नागनथैयाकी प्रसिद्ध लीला भी उन्हींकी देन है। मानसरोवरके निकट उनको काकभुशुण्डिजीके दर्शन हुए और तभीसे उन्होंने काशीमें रामकथामृत-पान कराना आरम्भ किया।

प्रह्लादघाटपर निवास करते हुए उनमें कवित्व शक्ति प्रस्फुटित हुई और वे संस्कृतमें पद्यरचना करने लगे, किंतु दिनमें वे जो पद्य रचते, रातमें लुप्त हो जाते। यह नित्यकी घटना थी। एक सप्ताह इसी तरह बीता। आठवें दिन भगवान् शंकरने उन्हें स्वप्नमें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। गोस्वामीजीकी निद्रा भंग हो गयी और वे उठ बैठे। उन्होंने शिव-पार्वतीको अपने समक्ष उपस्थित पाया और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। शिवजी बोले—तुम अयोध्यामें रहते हुए भाषामें रामकाव्यकी रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी रचना 'सामवेद' के समान फलवती होगी। इतना कहकर श्रीगौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। शिवादेशके अनुसार गोस्वामीजी अयोध्या चले गये और वहाँ उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' की रचना की। तदनन्तर काशी लौटकर शिव-पार्वतीको 'मानस' सुनाया।

यहाँ गोस्वामीजीके 'श्रीरामचरितमानस' की मूल प्रति विश्वनाथ-मन्दिरमें रखी गयी। प्रातः मन्दिरके पट खुले तो देखा गया—पुस्तकपर लिखा है—'**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' और नीचे भोलेनाथ शंकरके हस्ताक्षर हैं। उस समय उपस्थित जनोंने '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' की ध्वनि भी सुनी।

जब काशीके पण्डितोंने सुना कि ऐसी घटना हुई है तो वे उद्वेलित हो उठे, उनके मनमें ईर्ष्या होने लगी। वे तुलसीदासजीकी निन्दा करने लगे और 'मानस' को नष्ट करनेका उपक्रम भी। इसे गायब करनेके लिये दो चोर भेजे गये। चोरोंने देखा कि तुलसीदासजीकी कुटियाके बाहर श्याम और गौरवर्णके दो अत्यन्त सुन्दर

तुलसीदासके पहरेदार

वीर धनुष-बाण लिये पहरा दे रहे हैं। उनके दर्शनसे चोरोंकी बुद्धि पवित्र हो गयी, वे चोरी छोड़कर भगवद्भजन करने लगे। तुलसीदासजीने अपने ग्रन्थके कारण प्रभुको कष्ट हुआ जान अपना सारा सामान लुटा

* गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवन-चरित्रके सम्बन्धमें कई मान्यताएँ भी प्रसिद्ध हैं। लेखक महोदयने तुलसीदासजीके सम्बन्धमें कुछ तथ्य प्रस्तुत किये हैं, जो गोस्वामीजी महाराजके महिमामय चरित्रावलोकनके तात्पर्यसे यहाँ यथावत् प्रस्तुत हैं।

दिया और ग्रन्थकी मूल प्रति अपने मित्र टोडरमलके पास रख दी। इसके बाद उन्होंने एक दूसरी प्रति लिखी। उस प्रतिलिपिसे अन्य प्रतिलिपियाँ तैयार की जाने लगीं। ग्रन्थका द्रुतगतिसे प्रचार होने लगा। यह देखकर पण्डितोंसे फिर नहीं रहा गया और उन लोगोंने श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीसे ग्रन्थपर अपना मन्तव्य देनेका अनुरोध किया। श्रीमधुसूदनजीने ग्रन्थावलोकनके पश्चात् अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और लिखा—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

भाव यह कि इस काशीरूपी आनन्दवनमें तुलसीदास चलता-फिरता तुलसीका पौधा है। उसकी कवितारूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है, जिसपर श्रीरामरूपी भँवरा सदा मँडराया करता है।

काशीके पण्डितोंको इतनेसे भी सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने दूसरी चाल चली। भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें उनके समक्ष सबसे ऊपर वेद, उसके नीचे शास्त्र, शास्त्रोंके नीचे पुराण और सबके नीचे 'श्रीरामचरितमानस' रखा गया। मन्दिर बन्द कर दिया गया। प्रातःकाल मन्दिर खुलनेपर देखा गया कि श्रीरामचरितमानस वेदोंके ऊपर रखा है। अब तो पण्डितोंके सिर शर्मसे झुक गये। उन लोगोंने तुलसीदासजीसे क्षमा-याचना की।

इतना ही नहीं, जब तुलसीदासजी असीघाटपर निवास कर रहे थे कि एक दिन रात्रिमें कलियुग मूर्तरूप धारणकर उनके पास आया और उनको त्रास देने लगा। तुलसीदासजीने हनुमान्‌जीका ध्यान किया। उन्होंने तुलसीदासजीको विनयके पद रचनेके लिये कहा। परिणामतः गोस्वामीजीने गोपालमन्दिरमें रहकर 'विनय-पत्रिका' की रचना की और उसे प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दिया। भगवान् श्रीरामने उसपर अपने हस्ताक्षर करके तुलसीदासजीको निर्भय कर दिया।

प्रह्लादघाटके निवासी पं० श्रीगंगारामजी काशिराजके राजज्योतिषी थे। मित्रताके कारण गोस्वामी तुलसीदासजी उन दिनों वहीं रहते थे। एक बार काशिराजके यहाँ कोई घटना घटी, जिसके विषयमें गंगारामजीसे पूछा गया। गंगारामजीने तुलसीदासजीसे जिज्ञासा की। गोस्वामीजीने 'श्रीरामशलाका प्रश्नावली' की रचना की और उनका समाधान कर दिया। काशिराजके दरबारमें गंगारामजीने जब काशिराजके प्रश्नका उत्तर दिया और वह सही निकला तो वे उनके द्वारा बारह सौ स्वर्ण मुद्राओंसे पुरस्कृत किये गये। पुरस्कारकी राशि लाकर उन्होंने गोस्वामीजीके श्रीचरणोंमें रख दी। तुलसीदासजीने बहुत मुश्किलसे उसे स्वीकार तो कर लिया, किंतु उसके सदुपयोगकी योजना बनाने लगे।

तुलसीदासजीकी अपनी नाव थी और वे काशीवास करते हुए उसीसे गंगाजीके उस पार नित्य शौचादिके निमित्त जाया करते थे। निवृत्त होनेपर शेष जल वे एक पेड़में डाल देते थे। एक दिन जल नहीं बचा, जिससे पेड़में डालना सम्भव न हो सका। गोस्वामीजी पेड़के निकटसे लौट रहे थे कि उस निर्जन स्थानसे आवाज आयी—आज तो मैं प्यासा ही रह गया। सुनते ही तुलसीदासजी चौंके, उन्होंने चतुर्दिक् दृष्टि दौड़ायी, किंतु उनको वहाँ कोई नहीं नजर आया। उन्हें आश्चर्यचकित देख स्वरमें और भी स्पष्टता आयी, जिससे गोस्वामीजीको यह समझते देर न लगी कि इस वृक्षमें किसी प्रेतका वास है, जिसकी पिपासा आज शान्त नहीं हुई है। अपवित्र जलसे प्रेतादि योनियाँ तृप्त होती हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। इसी कारण रोज तुलसीदासजीके जलसे उस प्रेतकी तृप्ति होती थी। प्रेतकी व्याकुलता देख गोस्वामीजी गंगाजल ले आये और उन्होंने उसे पेड़में डाल दिया। प्रेत केवल तृप्त ही नहीं हुआ, अपितु उसने गोस्वामीजीसे कुछ माँगनेका आग्रह किया। गोस्वामीजीको तबतक अपने इष्टदेव श्रीरामके दर्शन नहीं हुए थे और वे बोले—मुझे श्रीरामके दर्शन करा दो। प्रेत बोला—मैं इतना समर्थ होता तो प्रेतत्वसे अपनेको मुक्त कर लेता, किंतु तुमको एक युक्ति बतलाता हूँ। कर्णघण्टापर सायंकाल नित्य रामकथा होती है, जिसमें हनुमान्‌जी भी आते हैं और एक कोनेमें वृद्ध कोढ़ी ब्राह्मणके रूपमें उपस्थित रहते हैं, ताकि उनको कोई छू या पहचान न सके।

गोस्वामीजी असीघाट लौटे और उन्होंने कर्णघण्टा स्थित रामकथास्थलका पता लगाया। वहाँ प्रेतके कथनानुसार

वस्तुतः हनुमान्‌जी उक्त रूपमें बैठे थे। गोस्वामीजीने कथामृतका पान किया और कथासमाप्तिके क्षणोंकी अत्यन्त उत्सुकतासे प्रतीक्षा करने लगे। उनको विश्वास हो गया कि प्रभु श्रीरामके दर्शन अब हो जायँगे।

कथा समाप्त हुई और हनुमान्‌रूपी वे वृद्ध ब्राह्मण सबको प्रणामकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। तुलसीदासजी उनके पीछे हो लिये। काफी दूर पहुँचनेपर वे हनुमान्‌जीके श्रीचरणोंपर गिर पड़े और बोले—एक प्रेतने मुझे बताया है कि आप हनुमान्‌जी हैं और श्रीरामके दर्शन करानेमें सक्षम हैं। हनुमान्‌जी बोले—तुम चित्रकूट पहुँचो, वहीं तुम्हें श्रीराम मिलेंगे। तुलसीदासजी चित्रकूट गये और वहाँ उनको श्रीरामके दर्शन हुए।

इधर तुलसीदासजीको राम-मिलनका उपाय बताकर हनुमान्‌जी अन्तर्धान होने लगे। गोस्वामीजीने उनसे अपना विग्रह वहाँ बनानेकी प्रार्थना की। हनुमान्‌जी यह सुनकर भूमिसात् हो गये। गोस्वामीजी रातभर उस स्थानकी मिट्टी खोदते रहे। अन्तमें उनको हनुमान्‌जीकी मूर्ति मिली, जिसे उन्होंने वहीं वृक्षके तले स्थापितकर पूजन-अर्चन किया। तबसे यह क्रम अखण्डरूपसे चला आ रहा है। वह मूर्ति और कोई नहीं, संकटमोचन ही हैं।

मित्रवर गंगारामजी ज्योतिषीसे मिले बारह सौ स्वर्ण-मुद्राओंसे गोस्वामीजीने काशीमें बारह हनुमान्-मन्दिरोंकी स्थापना करायी थी, जिनमें संकटमोचन मुख्य है। अन्य मन्दिरोंमें वृद्धकाल, राजमन्दिर, पंचगंगा, कर्णघण्टा, नीचीबाग, मणिकर्णिकाघाट, हनुमान्‌घाट, तुलसीघाट, भदैनी, नरिया और हनुमान्‌फाटक स्थित हनुमान्‌जीकी मूर्तियाँ उल्लेख्य हैं, जिनकी अपनी महिमा है। ये सभी जाग्रत् स्थान हैं। सभी मन्दिरोंमें नित्य, विशेषरूपमें मंगलवार तथा शनिवारको भक्तजन भारी संख्यामें पहुँचते हैं। सभी मूर्तियाँ दक्षिणाभिमुखी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवनगरी काशीमें तुलसीदासजीको असीम संघर्षका सामना करना पड़ा, किंतु श्रीरामके प्रति उनकी भक्ति तथा निष्ठामें तनिक भी कमी नहीं आयी और उन्होंने यहाँ रामभक्तिकी अमृतधारा बहाकर सबको धन्य और कृतकृत्य कर दिया। हम कभी उनसे उऋण नहीं हो सकते और विश्वकी ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उनके यशको धूमिल कर सके। श्रीराम तथा हनुमान्‌जीके ऐसे आदर्श अनन्य भक्त तुलसीदासजीको बारम्बार प्रणाम!

हनुमान्‌जीके द्वादशनाम और उनके पाठका माहात्म्य

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥
एवं द्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः।
स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत्॥
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत्।
राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन॥

हनुमान्, अंजनीसूनु, वायुपुत्र, महाबल (महाबलवान्), रामेष्ट (रामके प्यारे), फाल्गुन (अर्जुन)-के सहायक (रूपमें उनकी ध्वजामें निवास करनेवाले), पिंगाक्ष (पीली आँखोंवाले), अमितविक्रम (अनन्त पराक्रमशाली), उदधिक्रमण (समुद्रको लाँघ जानेवाले), सीता-शोक-विनाशन (सीताके शोकका नाश करनेवाले), लक्ष्मणप्राणदाता (लक्ष्मणको संजीवनी बूटी लाकर जिलानेवाले) तथा रावणदर्पहारी—महान् आत्मबलसे सम्पन्न कपिराज हनुमान्‌जीके इन बारह नामोंका जो मनुष्य सोते, जागते अथवा कहीं भी यात्रा करते समय पाठ करता है, उसे किसी प्रकारका भी भय नहीं होता और वह संग्राममें विजयी होता है। राजद्वार एवं गहन वन (आदि) किसी भी स्थानमें उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता। [**आनन्दरामायण**]

निखारिये अपने व्यक्तित्वको

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

किसी भी व्यक्तिकी पहचान उसके व्यक्तित्वसे होती है। प्रभावशाली व्यक्तित्ववालोंकी ही समाज तथा राष्ट्रमें प्रतिष्ठा होती है। यदि आप चाहते हैं कि आपका व्यक्तित्व विशाल, आकर्षक, सरल, शान्त एवं प्रभावशाली हो तो निम्न सात बातोंपर विशेष ध्यान देना होगा—

१-आचरण निष्कपट रखें—व्यक्तित्व-विकासके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात है अपने जीवनमें आचरणको निष्कपट रखना। फूलोंमें जो स्थान सुगन्धका है, फलोंमें जो स्थान मिठासका है, भोजनमें जो स्थान स्वादका है, ठीक, वही स्थान जीवनमें आचरणका है। अपने आचरणको ऐसा बनायें कि जहाँ भी जायँ आपका आदर-सत्कार हो।

२-सद्गुणोंको अपनायें—भड़कीले अथवा कीमती कपड़े पहननेसे कभी व्यक्तित्व आकर्षक नहीं होता है। अधिक आभूषणोंके शृंगार करनेसे भी व्यक्तित्व नहीं निखरता, निखरता है केवल चरित्रसे। चरित्रको उसके गुण ही सजाते, सँवारते हैं। गुण ही व्यक्तिको महान् बनाकर समाज एवं राष्ट्रमें प्रतिष्ठित करते हैं। गुणहीन व्यक्ति आदरके पात्र नही होते हैं। जबकि गुणवान् व्यक्ति सर्वत्र आदर और यशके पात्र होते हैं। व्यक्तिके सात्त्विक गुण ही उसके व्यक्तित्वकी कसौटी होते हैं, क्योंकि सात्त्विक गुण ही व्यक्तिकी वाणीमें विनम्रता, व्यवहारमें सरलता और विचारोंमें शुचिता लाते हैं।

संस्कृतमें एक सूक्ति है, जिसका तात्पर्य है कि मनुष्यको न तो केयूर (बाजूबन्द), न चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न उबटन, न फूल और न सजाये हुए बाल ही सुशोभित कर सकते हैं, वह यदि संस्कारसम्पन्न वाणी धारण करे तो एकमात्र वही उसकी शोभा बढ़ा सकती है, इसके अतिरिक्त और जितने आभूषण हैं, वे तो नष्ट हो जाते हैं, सच्चा भूषण तो वाणी ही है—

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

३-आत्मविश्वासी बनें—आत्मविश्वासको सदा दृढ़ बनाये रखे। जिसके भीतर आत्मविश्वास होता है, वह कठिन-से-कठिन परिस्थितिमें भी घबराता नहीं है। जिसने आत्मविश्वास खो दिया मानो उसने सर्वस्व खो दिया। आत्मविश्वासकी शक्तिसे ही व्यक्तित्व निखरता है। आत्मविश्वासी व्यक्तिके मुखमण्डलकी आभा कभी मलिन नहीं होती है, अपितु चेहरा कान्तियुक्त रहता है।

४-समयका आकलन करें—मनुष्यके जीवनमें समय सबसे मूल्यवान् है। समयकी गति, स्वभाव और प्रवृत्तिको जो व्यक्ति पहचानकर कार्य करता है, उसको ही सफलता मिलती है। जो व्यक्ति समयपर उचित निर्णय नहीं ले सकते हैं, उनकी बादमें असफलता निश्चित होती है। समयका सदुपयोग करनेवाले व्यक्ति ही ऊँचाईके शिखरपर पहुँचते हैं। आज हर मनुष्य स्वयंसे अधिक दूसरोंके बारेमें सोचता है। किसी दूसरेके बारेमें सोचकर अपना अमूल्य समय नहीं गँवाना चाहिये। अपने कार्यको निर्धारित समयमें पूर्ण करनेवाले व्यक्ति ही प्रतिष्ठित होते हैं।

५-दूसरोंके प्रति स्नेह व सहानुभूति रखें—दूसरोंके प्रति आपके हृदयमें स्नेह और सहानुभूति होनी चाहिए। जब आप किसीको प्यार देंगे तो दूसरा भी आपपर प्यार लुटायेगा। दूसरोंको अपमानित न करें और न ही कभी दूसरोंकी शिकायत करें। याद रखें कि अपमानके बदलेमें अपमान ही मिलता है। दूसरोंमें जो भी अच्छे गुण हैं, उनकी ईमानदारीके साथ दिल खोलकर प्रशंसा करें। झूठी प्रशंसा कदापि न करें। यदि आप किसीकी प्रशंसा नहीं कर सकते तो कम-से-कम दूसरोंकी निंदा कभी भी न करें। किसीकी निंदा करके आपको कभी भी किसी प्रकारका लाभ नहीं मिल सकता, उलटे आप उसकी नजरोंमें गिर सकते हैं। अपने स्वभावसे सदैव दूसरोंके मनमें अपने प्रति तीव्र आकर्षणका

भाव उत्पन्न करनेका प्रयास करें। दूसरोंको सच्ची मुसकान प्रदान करें। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कीर्ति, प्रशंसा अत्यधिक चाहता है। यदि आप दूसरोंकी कीर्ति बढ़ायेंगे तो वे भी आपकी कीर्ति अवश्य ही बढ़ायेंगे। दूसरोंके महत्त्वको स्वीकारें तथा उनकी भावनाओंका आदर करें। दूसरोंके द्वारा किये छोटे-से-छोटे कामकी भी प्रशंसा करें। जिसके जीवनमें न सन्तोष है न शान्ति, वह जीवन भी क्या जीवन है? दूसरा उन्नति कर रहा है तो उससे प्रेरणा लेकर उन्नति करना चाहिए। दूसरेने उन्नति कैसे की—इसका विश्लेषण करना चाहिए तथा उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

६-अपनी गलती स्वीकार करें—वही व्यक्ति अत्यधिक लोकप्रिय, प्रशंसनीय होता है, जो अपनी गलतीको स्वीकार करता है। यदि आपसे कोई भूल हुई है तो उसे तुरंत स्वीकार करें। आप हर सप्ताह अपनी प्रगतिका मूल्यांकन करें, स्वयं ही मालूम करें कि आपने कब, कौन-सी गलती की और भविष्यमें उसे न करनेका संकल्प करें।

७-कुव्यसनों एवं दुष्प्रवृत्तियोंको त्यागें—वही व्यक्ति महान् होता है, जिसमें कोई कुव्यसन या कुप्रवृत्ति नहीं होती है। कुव्यसनोंसे शारीरिक दुर्बलता आती है और शारीरिक दुर्बल व्यक्ति सदा रोगी तथा आलसी रहता है। अच्छे व्यक्तित्ववाले कभी नशीली वस्तुओं जैसे धूम्रपान, जर्दा, गुटका, मद्यपान, मादक द्रव्य पदार्थ आदिका उपयोग नहीं करते। मद्यपान और धूम्रपान-जैसी नशीली वस्तुओंका उपयोग आजकल फैशन हो गया है और इसमें अपनी श्रेष्ठता, सभ्यता समझना महान् मूर्खता है। यह तो अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारनेके समान है। जो व्यक्ति इनसे दूर रहता है, वह ही सदा स्वस्थ रह सकता है तथा स्वस्थ व्यक्ति ही निरंतर प्रगति करता है।

जरा सोचिये, जिस व्यक्तिने नशीली वस्तुओंको अपना रखा हो, दुष्प्रवृत्तियों, जुआ आदिका शिकार हो चुका हो, उसका व्यक्तित्त्व कैसे निखर सकता है? मादक द्रव्योंका सेवन करनेके लिये जो प्रेरित करता है, वे मित्र नहीं परम शत्रु हैं। भगवान्ने हमें मूल्यवान् जीवन और अनमोल शरीर इसलिए नहीं दिया कि हम जानबूझकर उसे मृत्युके हवाले कर दें। यदि आप अपना व्यक्तित्व आदर्श, अनुकरणीय एवं महान् बनाना चाहते हैं तो कभी गलत राह नहीं अपनायें, सदा सही मार्गपर चलकर ही आप महान् व्यक्तित्वके अधिकारी हो सकते हैं।

कोटि-कोटि नाम तेरे

(श्रीमती डॉ० उर्मिलाजी किशोर)

कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ।
है अनन्त नाम वाला, कौन-सा विचारूँ॥
वेद कहें देव है तू, इन्द्र हृदय धारूँ,
वेदान्त कहे ब्रह्म तू, ब्रह्म ही प्रचारूँ।
सांख्य कहे पुरुष है तू, प्रकृति में निहारूँ,
कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ॥
तू विधाता सृष्टि स्त्रष्टा, सृष्टि को निहारूँ,
जगत् पालक विष्णु है तू, विष्णु कह पुकारूँ।
या कहूँ कल्याणप्रद शिव, नाम मैं उचारूँ,
कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ॥
सत्य में है वास तेरा, सत्य ही विचारूँ,
हर हृदय में प्रेम तू है, प्रेम मन सँवारूँ।
सृष्टि का सौन्दर्य तू, सौन्दर्य में निहारूँ,
कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ॥
रम रहा है विश्व भर में, राम मैं विचारूँ,
है सहस्त्र नाम के सम, राम नाम धारूँ।
है राम नाम सत्य-सार, राम ही पुकारूँ,
कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ॥
है सदा आनन्दमय तू, वही उर सँवारूँ,
सुन रहा हर नाम से, जिस नाम से पुकारूँ।
है अनन्त नाम वाला, कौन-सा विचारूँ,
कोटि-कोटि नाम तेरे, कौन-सा पुकारूँ॥

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क ६ पृ०-सं० २८ से आगे]

(९) श्रीवैद्यनाथ

पटना-कलकत्ता रेलमार्गपर किउल स्टेशनसे दक्षिण-पूर्व १००० किलोमीटरपर देवघर है, इसे ही वैद्यनाथधाम कहते हैं। यहींपर वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग है। इसकी कथा इस प्रकार है—रावणने अतुल बल-सामर्थ्यकी प्राप्तिकी इच्छासे भगवान् शिवकी आराधना प्रारम्भ की। वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्निसेवन करता था, जाड़ेमें पानीमें रहता था एवं वर्षा-ऋतुमें खुले मैदानमें रहकर तप करता था। बहुत कालतक इस उग्र तपसे भी जब शिवजीने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया, तब उसने पार्थिव लिंगकी स्थापना की और उसीके पास गड्ढा खोदकर अग्नि प्रज्वलित की। वैदिक विधानसे उस अग्निके सामने उसने शिवजीकी विधिवत् पूजा की। रावण अपने सिरको काट-काटकर चढ़ाने लगा। शिवजीकी कृपासे उसका कटा हुआ सिर पुनः जुड़ जाता था। इस प्रकार उसने नौ बार सिर काटकर चढ़ाया। जब दसवीं बार वह सिर चढ़ानेको उद्यत हुआ, तब भगवान् शिव प्रकट हो गये। भगवान् शिवने रावणसे कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' रावणने उनसे अतुल बल-सामर्थ्यके लिये प्रार्थना की। भगवान् शिवने उसे वह वर दे दिया। रावणने उनसे लंका चलनेके लिये निवेदन किया। तब भगवान् शिवने उसके हाथमें एक शिवलिंग देते हुए कहा—'रावण! यदि तुम इसे मार्गमें कहीं भी पृथिवीपर रख दोगे तो यह वहीं अचल होकर स्थित हो जायगा। अतः इसे सावधानीसे ले जाना।' रावण शिवलिंगको लेकर चलने लगा। शिवजीकी मायासे मार्गमें उसे लघुशंकाकी इच्छा हुई, जिसे वह रोक न सका। उसने पासमें खड़े हुए एक गोपकुमारको देखा और निवेदन करके वह शिवलिंग उसीके हाथमें दे दिया। वह गोप उस शिवलिंगके भारको सहन न कर सका और उसने वहीं पृथिवीपर उसे रख दिया। धरतीपर पड़ते ही वह शिवलिंग अचल हो गया। तत्पश्चात् रावण जब उसे उठाने लगा, तब वह शिवलिंग उठ न सका। हताश होकर रावण घर लौटा। यही शिवलिंग 'वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग'के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हो गया। इस घटनाको जानकर ब्रह्मा, इन्द्रादि समस्त देवगण वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया। देवताओंने उनकी प्रतिष्ठा की। अन्तमें देवगण उन 'वैद्यनाथ महादेव' की स्तुति करके अपने-अपने भवनको चले गये। वैद्यनाथ महादेवकी पूजा-अर्चासे समस्त दुःखोंका शमन होता है और सुखोंकी प्राप्ति होती है। यह दिव्य शिवलिंग मुक्तिप्रदायक है।

यहाँ दूर-दूरसे जल लाकर चढ़ानेका अत्यधिक माहात्म्य वर्णित एवं लोकविश्रुत है। श्रद्धालुजन कन्धेपर काँवर लिये यहाँकी यात्रा सम्पन्न करते हैं।* **[क्रमशः]**

* 'परल्यां वैद्यनाथं च' इस वचनके अनुसार कुछ विद्वानोंका यह निश्चित मत है कि महाराष्ट्र राज्यके अन्तर्गत बीड जिलेमें परलीग्रामका शिवलिंग ही वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग है।

स्मृति ही है अन्तिम समयकी साधना

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

शरीरका नियम—स्थूल शरीर जन्मता है, बढ़ता है, बदलता है, बिगड़ता है और अन्तमें मरता है—यह स्थूल शरीरका अटल नियम है।

बन्द हो जाना—शरीर और इन्द्रियोंसे आप जितनी भी साधनाएँ करते हैं, जैसे—पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन, जप, तप, ध्यान, मन्दिरमें जाकर भगवद् विग्रहके दर्शन, तीर्थ, व्रत, दान, हवन, यज्ञ आदि ये सब उस दिन बन्द हो जायँगी, जिस दिन आपका शरीर वृद्ध, असमर्थ एवं बीमार हो जायगा। इच्छा होते हुए भी आप इन साधनाओंको नहीं कर पायेंगे।

स्मृति—मृत्युके समय शरीरकी सभी शक्तियाँ लगभग शून्य हो जाती हैं। उस समयमें की जानेवाली साधनाका नाम है—स्मृति। स्मृतिके अनुसार ही आपको आगेकी योनि मिलेगी। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(८।६)

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, उस (अन्तकालके) भावसे सदा भावित होता हुआ उस-उसको ही प्राप्त होता है अर्थात् उस योनिमें ही चला जाता है।

स्मृतिका आशय—स्मृतिका अर्थ है—सही बात हर समय, हर स्थानपर, हर अवस्थामें याद रहना और यादके अनुसार ही आचरण एवं व्यवहार होना। उदाहरणके लिये आपके परिवारमें चार महिलाएँ हैं—आपकी माँ, आपकी पत्नी, आपकी बहन, आपकी बेटी। आपको सदैव यह बात याद रहती है कि यह मेरी माँ है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी बहन है, यह मेरी बेटी है। इस यादके अनुसार माँके साथ माँ-जैसा, पत्नीके साथ पत्नी-जैसा, बहनके साथ बहन-जैसा, बेटीके साथ बेटी-जैसा व्यवहार स्वतः होता है। स्वप्नमें भी आपकी यह स्मृति यथावत् बनी रहती है।

स्मृतिका स्वरूप—अन्तिम समयका कोई निश्चित समय नहीं है। भगवान् और संसारके बारेमें जो सही बातें हैं, उनको एक क्रमसे (सबसे पहले सबसे ऊँची, फिर उससे कम ऊँची, फिर उससे भी कम ऊँची आदि-आदि) लिखी जा रही है। आपको जिस स्तरकी बातकी स्मृति रहेगी, उसी स्तरका प्रभाव आपके जीवनपर स्वतः होगा अर्थात् वैसा ही आपका आचरण एवं व्यवहार होगा। यदि स्मृति एवं आचरणमें अन्तर है तो यह माना जायगा कि आपकी स्मृति कच्ची एवं कमजोर है अथवा वह केवल बुद्धिके स्तरपर है।

सही बातें—सही बातोंका विवरण इस प्रकार है—

(१) केवल भगवान् हैं—इस जगत्‌में केवल भगवान् हैं और विभिन्न रूपोंमें वे अपनी लीला कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(७।७)

अर्थात् हे धनंजय! मेरे सिवाय (इस जगत्‌का) दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही ओतप्रोत है।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आपको हर समय भगवान् याद रहेंगे। आपके जीवनमें मोह, ममता, कामना, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि विकार नहीं रहेंगे। सबके प्रति सद्भाव एवं यथाशक्ति सहयोग रहेगा। जीवन भगवत्प्रेमके अलौकिक आनन्दसे भरा रहेगा।

(२) प्रेमसे दिख जाना—इस जगत्‌में विभिन्न रूपोंमें केवल भगवान् हैं। उनको प्रेम देनेसे उनके उस रूपके दर्शन हो जाते हैं, जिसका वर्णन ग्रन्थोंमें आया है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(१।१८५।५)

अर्थात् [भगवान् शंकर कहते हैं—] मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आपके मनमें सबको सुख, सुविधा, प्रेम, प्रसन्नता देनेकी भावना रहेगी। अपने स्वजनोंको भगवान्का रूप मानकर आप उनकी भरपूर सेवा करेंगे।

(३) जगत् है ही नहीं—जगत्का अस्तित्व नहीं है। जगत् प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। जिस प्रकार स्वप्नमें सब कुछ सच्चा दिखायी देता है, लेकिन जागते ही वह मिथ्या हो जाता है, इसी प्रकार आँखोंसे साफ-साफ दिखायी देनेवाला जगत् बुद्धिसे देखनेपर मिथ्या लगता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कुछ तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

(२।९२)

अर्थात् जैसे स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाय या कंगाल स्वर्गका स्वामी इन्द्र हो जाय तो जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपंचको हृदयसे देखना चाहिये।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि सांसारिक अनुकूलता-प्रतिकूलता, मान-अपमान, हानि-लाभका आपपर कोई असर नहीं होगा। आप सम एवं शान्त रहेंगे।

(४) भगवान् मालिक हैं—इस जगत्को बनाने, चलाने, इसपर शासन और नियन्त्रण करनेवाले भगवान् हैं। वे ही इसके मालिक हैं, सब कुछ उनका है। भगवान्ने इस जगत्की केवल तीन चीजें आपको दी हैं—शरीर, स्वजन (पति, पत्नी, संतान, भाई, बहन आदि), सामान-सम्पत्ति। इन तीनोंके मालिक भी भगवान् हैं।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि इनके न रहनेपर आपको दुःख नहीं होगा। इनमें आपका मोह नहीं होगा।

(५) प्रेमी भक्त बनना—भगवान्ने आपको ये तीनों चीजें इसलिये दी हैं कि आप इन तीनोंके द्वारा भगवान्को प्रेम (प्रसन्नता) देकर उनके महान् प्रेमी भक्त बन जायँ—कैसे? मेरे भगवान्को प्रसन्नता मिलेगी—इस भावनासे शरीरको भगवान्का मेहमान मानकर सेवा करें। स्वजनोंको भगवान्के स्वरूप मानकर इनको सुख, सुविधा, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता दें। सामान-सम्पत्तिको भगवान्की धरोहर मानकर सँभालकर रखें और इसका सदुपयोग करें। सभी कार्योंको भगवान्के कार्य मानकर पूरी सावधानीसे करें।

इस स्मृतिसे आपका शरीर स्वस्थ एवं नीरोग रहेगा, आपके परिवारमें शान्ति रहेगी। आप भगवान्के प्रेमी भक्त भी बन जायँगे।

(६) कुछ नहीं करता—इस जगत्का कोई भी मनुष्य कुछ भी नहीं करता है, सबको सब कुछ भगवान् करवाते हैं, मनुष्य एक कठपुतली है।

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

(१।१२४क)

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

(४।११।७)

अर्थात् तब महादेवजीने हँसकर कहा—न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है।

हे उमा! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आपको दुःख देनेवाले, आपकी निन्दा, आलोचना, अपमान करनेवाले, बार-बार समझानेपर भी आपकी बात न माननेवाले परिवारजनपर आपको क्रोध नहीं आयेगा। आपको सुख, सुविधा, सम्मान देनेवाले, आपकी सेवा करनेवाले परिवारजनमें आपका राग (मोह) नहीं होगा। आप राग-द्वेषसे मुक्त हो जायँगे।

(७) भगवान्की महिमा—भगवान् समर्थ हैं, सदैव हैं, सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, सबमें हैं, सबके हैं,

परम सुहृद हैं। पतितपावन, करुणासागर हैं, क्षमासिन्धु हैं, दीनबन्धु हैं, दीनानाथ हैं, मेरे सच्चे माता-पिता हैं।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आप निश्चिन्त, निर्भय, निडर, निर्मल, निर्विकार, निर्मम, निष्काम, निर्वैर और निरभिमान हो जायँगे।

(८) विधान मंगलकारी—अपनी तरफसे बुद्धि और विवेककी सीमातक पूरी सावधानी रखनेके बाद भी अपने-आप अथवा किसी व्यक्तिके माध्यमसे आपके जीवनमें जिस प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो जाता है, उसका नाम है—भगवान्‌का विधान। अपनी तरफसे परिवारजनोंको भगवान्‌के स्वरूप या मेहमान मानकर सद्भाव रखने, स्नेह, सेवा और प्रेमका व्यवहार करनेके बाद भी यदि कोई परिवारजन आपसे नाराज रहता है अथवा आपके साथ प्रतिकूल व्यवहार करता है—वह भी भगवान्‌का विधान है। भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें आपका हित निहित होता है।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आपको प्रतिकूल परिस्थितिके आनेका भय नहीं लगेगा और प्रतिकूल परिस्थिति आने एवं परिवारजनोंद्वारा प्रतिकूल व्यवहार करनेपर लेशमात्र भी दुःख नहीं होगा, प्रत्युत आप इस आधारपर शान्त एवं प्रसन्न रहेंगे कि इसमें मेरा हित छिपा हुआ है। भगवान् जो करते-करवाते हैं, अच्छा ही करते हैं।

(९) प्रारब्धसे मिलना—आपके शरीरको दो तरहकी चीजें मिलती हैं—सुख-सामग्री और सुख-सुविधाएँ। खाने-पीनेकी सभी चीजोंको सुख-सामग्री कहते हैं। जो चीजें शरीरको ऊपरसे मिलती हैं, जैसे—विशाल मकान, कीमती जेवर एवं कपड़े, महँगी कारें, हवाई यात्राएँ आदि—इनको सुख-सुविधाएँ कहते हैं। ये दोनों चीजें न तो रुपयोंसे मिलती हैं और न परिवारजनोंसे। रुपये और परिवारजन तो इनके मिलनेमें केवल माध्यम बनते हैं। ये चीजें पूर्णतया आपके प्रारब्ध (भाग्य)-से मिलती हैं। प्रारब्ध बन जाता है बहुत पहले और शरीर बनता है बादमें। दोनोंको बनाते हैं भगवान्। केवल असाधारण परिस्थितियोंको छोड़कर प्रारब्धमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। आपके पास न रुपये हैं न परिवारजन, फिर भी यदि आपके प्रारब्धमें उच्च कोटिकी सुख-सामग्री और सुख-सुविधाएँ हैं तो वे आपको मिलेंगी। ऐसी स्थितिमें रुपये दूसरे व्यक्तिके लगेंगे, दूसरा व्यक्ति आपको ये दोनों चीजें देगा। संतवाणी है—***दाने-दानेपर लिखा है खानेवालेका नाम।***

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि आप किसीके साथ किसी भी प्रकारकी बुराई नहीं करेंगे, आपको यह चिन्ता नहीं रहेगी कि रुपये अथवा परिवारजन न रहे तो मुझे भोजन, वस्त्र, सुविधाएँ कौन देगा। आप अपने कार्यको भगवान्‌का कार्य मानकर पूरी सावधानीसे करेंगे।

(१०) नुकसान नहीं करता—नुकसान दो प्रकारका होता है—शारीरिक नुकसान, अर्थात् शरीरको चोट पहुँचाना; आर्थिक नुकसान, अर्थात् रुपये, सामान, सम्पत्तिका नुकसान। आपका कोई भी परिवारजन, सम्बन्धी, मित्र, सहयोगी, अधिकारी आपका नुकसान नहीं करता है, वह आपका नुकसान कर ही नहीं सकता। आपको होनेवाले नुकसानके नौ कारण हैं—आपके कर्म, आपका भाग्य, आपका प्रारब्ध, आपका खराब समय, आपकी असावधानी, होनहार, देवदोष-पितृदोष, भगवान्‌का विधान, स्वयं भगवान्। कभी नुकसान अपने-आप हो जाता है, कभी परिवारजन उसमें माध्यम बन जाते हैं। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(२।२१९।४)

अर्थात् भगवान्‌ने विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

इस स्मृतिका प्रभाव यह होगा कि नुकसान करनेवाले परिवारजन, मित्र आदिपर आपको क्रोध नहीं आयेगा, आप इसके साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे। अपने नुकसानके लिये आप किसी दूसरे व्यक्तिको दोषी नहीं मानेंगे।

(११) दु:ख नहीं देता—भगवान्ने आपको इतना जोरदार बनाया है कि इस दुनियाका कोई भी व्यक्ति, कोई भी शक्ति, कोई भी परिस्थिति आपको दुखी, चिन्तित, अशान्त नहीं बना सकती। आपके स्वजन जब आपकी निन्दा, आलोचना, अपमान, तिरस्कार, बदनामी, चुगली करते हैं, आपका शारीरिक एवं आर्थिक नुकसान करते हैं तो आपको दु:ख होता है। यह दु:ख आपके स्वजन नहीं देते हैं। इस दु:खका मूल कारण आपकी अपनी निम्नलिखित पाँच भूलें हैं—पराधीनता; शरीर, स्वजन, सामान-सम्पत्तिमें आपका मोह; 'शरीर' को 'मैं' मान लेना; अपने इस सत्य स्वरूपको भूल जाना कि 'मैं' भगवान्का अंश हूँ; भगवान्में आपका कमजोर विश्वास। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ॥
(१।१०२।५)

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
(७।१२१।२९)

अर्थात् विधाताने जगत्में स्त्री-जातिको क्यों पैदा किया ? क्योंकि पराधीनको सपनेमें भी सुख नहीं मिलता।

सब रोगोंकी जड़ मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं।

इस स्मृतिका यह प्रभाव होगा कि दु:ख देते हुए दिखनेवाले परिवारजनपर आपको क्रोध नहीं आयेगा, उसके साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा। आप अपनी भूलोंको सुधारनेका प्रयास करेंगे।

(१२) कर्म-सिद्धान्त—भगवान्ने आपको कर्म करनेकी शक्ति एवं स्वाधीनता दी है। आप शुभ कर्म भी कर सकते हैं और अशुभ कर्म भी कर सकते हैं। आपको कर्मोंका फल भी मिलेगा। शुभ कर्मोंका फल है अनुकूल परिस्थिति और अशुभ कर्मोंका फल है प्रतिकूल परिस्थिति।

इस स्मृतिका यह प्रभाव होगा कि आप अपने जीवनमें कभी भी अशुभ कर्म नहीं करेंगे।

(१३) कामना न रखना—परिवारजनोंको सलाह देना, समझाना, अच्छी-अच्छी बातें बताना, उनसे अपनी जरूरतकी चीजें माँगना, लक्ष्य बनाना आदि 'कामना' नहीं है। किसी भी विचारके साथ 'ही' लगानेसे वह 'कामना' बन जाता है, जैसे—परिवारजन मेरी बात मानें ही, वे मुझे सम्मान दें ही, मेरा अपमान करें ही नहीं, मुझे लाभ हो ही, आदि। यह आपके जीवनका अनुभव है कि कामना करना आपके वशकी बात है, लेकिन उसको पूरी करना आपके वशकी बात नहीं है। यदि यह आपके वशकी बात होती तो आप अपनी सभी कामनाएँ पूरी कर लेते। कामना पूरी न होनेसे दु:ख, चिन्ता, अशान्ति, तनाव, डिप्रेशन आदि सभी मानसिक रोग पैदा हो जाते हैं, क्रोध भी आता है।

इस स्मृतिका यह प्रभाव होगा कि आप अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी कामना नहीं रखेंगे। सद्भावना रखेंगे और कर्तव्यका पालन करेंगे।

(१४) जो देंगे, वही मिलेगा—आप जमीनमें एक दाना डालते हैं, बदलेमें सैकड़ों दाने वापस मिलते हैं। इस संसारका यह अटल सिद्धान्त है कि आप समाज एवं संसारके प्रति हितभावना रखेंगे तो समाज एवं संसार आपके प्रति हितकी भावना रखेंगे। यदि आप परिवारजनों, मित्रों, सम्बन्धियोंको सुख, सुविधा, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता देंगे तो वे भी आपको सुख-सुविधा, सम्मान, प्रेम और प्रसन्नता देंगे। यदि आप उनको दु:ख देंगे, उनका अपमान करेंगे तो वे भी आपका कई गुना ज्यादा अपमान करेंगे।

इस स्मृतिका यह प्रभाव होगा कि आप सबके प्रति हितभावना रखेंगे और स्वजनोंको भरपूर सुख, सम्मान एवं प्रेम देंगे।

प्रभुकी स्मृति—यदि आपको अपने दैनिक व्यवहारिक जीवनमें इन बातोंकी स्मृति रहेगी तो आप अपने जीवनमें शान्त एवं प्रसन्न रहेंगे। अन्तिम समयमें आपको भगवान्की स्मृति रहेगी। आपका मानव-जीवन सफल हो जायगा।

संतचरित—

नाथपरम्पराके सिद्धसंत योगिराज गम्भीरनाथ

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

योगिराज गम्भीरनाथ सिद्धपुरुष थे। उन्होंने हठयोग, लययोग और राजयोगके क्षेत्रमें आत्मसिद्धि प्राप्त की थी। नाथयोग-परम्परामें इधर सात-आठ सौ वर्षोंमें उनके-जैसे योगीका दर्शन नहीं हुआ था। ऋद्धियों और सिद्धियोंने उनके चरणस्पर्शको अपना परम सौभाग्य समझा। वे शान्ति और गम्भीरताके उज्ज्वलतम रूप थे। बड़े-बड़े संतों और महात्माओंने उनके चरणोंमें अपनी श्रद्धा समर्पितकर आत्ममोक्षका विधान प्राप्त किया। हिमालयसे कन्याकुमारी अन्तरीपतकके भूमिभागमें बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें इतने बड़े योगीका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ था। उन्होंने मानवताको योगशक्तिसे सम्पन्न किया। उन्होंने योगब्रह्म—शिवका साक्षात्कार-लाभ किया। भारतके प्रायः समस्त तीर्थोंमें परिभ्रमणकर योगिराज गम्भीरनाथने उनकी महिमामें विशेष अभिवृद्धि की। माना, योगिराजका प्राकट्य उस समय हुआ था, जब भारत विदेशी शक्तिकी अधीनतामें था; पर गम्भीरनाथजीके लिये तो भौतिक जगत्‌की पराधीनताका कोई महत्त्व ही नहीं था; वे तो जागतिक प्रपंचसे अतीत थे। वे रहस्यपूर्ण ढंगसे आध्यात्मिक क्रान्तिका सृजन कर रहे थे। उनके योग-उदयकालमें विदेशी शासनको निकाल बाहर करनेके लिये बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंमें सशस्त्र राजक्रान्तिकी योजना कार्यरूपमें परिणत हो रही थी। महात्मा गम्भीरनाथने राजनीतिक क्रान्तिकारियोंकी आध्यात्मिक पिपासाकी तृप्ति की। अगणित बंगीय युवकोंने उनके पथ-प्रदर्शनमें गम्भीर, अखण्ड और शाश्वत स्वतन्त्रताज्योति—आत्मशान्तिका दर्शन किया।

महात्मा गम्भीरनाथने सिद्ध योगपीठ—गुरु गोरखनाथकी तपोभूमि गोरखपुरको अपनी तपस्यासे अक्षय समृद्धि प्रदान की। वे निरन्तर योगस्थ रहते थे। वे श्रीमद्भगवद्गीताकी भागवती विज्ञप्ति—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(६।४७)

'सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मेरेमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझे ही निरन्तर भजता है, वह मुझे परमश्रेष्ठ मान्य है।'—में अटल विश्वास रखते थे। योगिराज गम्भीरनाथ अपने समयके सर्वश्रेष्ठ योगी थे; वे धर्मतत्त्वके मर्मज्ञ और असाधारण आत्मज्ञ थे। उनके समकालीन महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीकी मान्यता थी कि 'हिमालयके देशमें—भारतदेशमें उनके-जैसा योगी कोई दूसरा नहीं है।' महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी उनकी परम योगविभूतिसे बहुत प्रभावित थे। महात्मा गम्भीरनाथकी साधना शैव-दर्शनके सिद्धान्तसे प्राणान्वित थी। वे शैव योगी होते हुए भी शुद्ध सच्चिदानन्द तत्त्वके निरपेक्ष और निष्पक्ष द्रष्टा थे। उनका योग श्रीगोरखनाथकी योगपद्धतिसे परिपुष्ट था। महात्मा गम्भीरनाथने गुरु गोरखनाथकी योग-साधनाका बीसवीं शताब्दीमें पूर्ण प्रतिनिधित्व किया। योगिराज गम्भीरनाथने योग और ज्ञानका समन्वय किया।

महात्मा गम्भीरनाथके पूर्वाश्रमके सम्बन्धमें कुछ भी निश्चितरूपसे कहना या लिखना आसान नहीं है। उनका जन्म विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दीके चौथे चरणमें काश्मीर प्रदेशके एक गाँवके समृद्ध परिवारमें हुआ था।

उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण ढंगकी थी। बचपनसे ही उनके जीवनमें योगाभ्यासके साम्राज्यमें प्रवेश करनेके पहले विषय-सुखकी सुविधा उपलब्ध थी; पर उनका ध्यान उसकी ओर तनिक भी नहीं था। पूर्वाश्रमके सम्बन्धमें पूछनेपर वे कहा करते थे—'प्रपंचसे क्या होगा?' उनकी सांसारिक पदार्थोंमें तनिक भी आस्था नहीं थी। धन-परिवार आदिके प्रति वे स्वाभाविकरूपसे विरक्त थे। जब वे नवयुवक ही थे, उन्हें सूचना मिली कि गाँवमें एक योगीका आगमन हुआ है। योगीने श्मशानमें अपना निवास चुना था। वे योगीसे मिलने गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे कहा कि 'महाराज! घरपर मेरा मन नहीं लगता, संसारके विषय-भोग मुझे काटने दौड़ते हैं। मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ।' योगी नाथ-सम्प्रदायके थे। उन्होंने श्रीगम्भीरनाथसे कहा—'आप गोरखपुर जाकर गोरखनाथ-मठके महन्त योगी बाबा गोपालनाथजी महाराजसे योग-दीक्षा लीजिये। मैं आपकी महत्त्वाकांक्षासे बहुत प्रसन्न हूँ। आप उच्चकोटिके योगी होंगे।'

श्रीगम्भीरनाथ योगीके आदेशसे गोरखपुरके लिये चल पड़े। वे गोरखनाथ-मठमें आये। लोग उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनके पास पर्याप्त रुपये थे, उन्होंने अच्छे-से-अच्छे रेशमी कपड़े पहन रखे थे। वे देखनेमें बड़े सौम्य और सुन्दर थे। महन्त गोपालनाथसे मिलनेपर उन्होंने उनके चरणोंमें आत्मार्पण कर दिया। वे नाथ-सम्प्रदायके योगमार्गमें दीक्षित हो गये। राजसी वेषका परित्यागकर श्रीगम्भीरनाथने कौपीन धारणकर योग-साधनाके निष्कण्टक राज्यमें प्रवेश किया। गोपालनाथजी महाराजने उनकी शान्त मुद्रासे प्रसन्न होकर उनको 'गम्भीरनाथ' नाम प्रदान किया। निस्सन्देह वे गम्भीरताके परम दिव्य सजीव समुद्र ही थे। वे गोरखनाथ-मठमें निवासकर योगाभ्यास करने लगे। उनकी गुरुनिष्ठा उच्चकोटिकी थी। वे गुरुकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करते थे। उन्होंने बड़ी तत्परता और तपसे अपने आध्यात्मिक उत्तरदायित्वका निर्वाह किया। वे मौन रहा करते थे, सत्य-चिन्तन और मठके आवश्यक कार्योंके समीचीन सम्पादनमें लगे रहते थे। बाबा गोपालनाथने धीरे-धीरे उनको मठके उपास्यकी पूजा-अर्चामें नियुक्त करना आरम्भ किया। श्रीगम्भीरनाथकी उपस्थितिसे मठमें शान्ति साकार हो उठी। उन्हें गुरुने प्रसन्न होकर पुजारीका कार्यभार सौंपा। इस प्रकार श्रीगम्भीरनाथके तपोमय साधनापूर्ण जीवनमें कर्मयोग-भक्तियोगके उदय, ज्ञानयोग—परम अन्तःस्थ ज्योतिके दर्शनका पथ प्रशस्त कर दिया। बाबा गोपालनाथकी प्रसन्नता और कृपासे अभिभूत श्रीगम्भीरनाथकी प्रारम्भिक योगसाधनापर देवीपाटनके योगी शिवनाथका भी अमित प्रभाव था।

श्रीगम्भीरनाथने योग-साधनाके लिये काशीकी पैदल यात्रा की। वे वनमार्गसे भूख-प्यासकी चिन्ता किये बिना चले जा रहे थे। उनका प्रभुकी कृपापर दृढ़ विश्वास था। तीसरे दिन वे भूखसे नितान्त परिश्रान्त हो गये, पर शेष शारीरिक शक्तिपर निर्भर होकर वे पुनीत महातीर्थकी ओर बढ़ते जा रहे थे। रास्तेमें एक परिचित ब्राह्मणसे उनकी भेंट हुई। वह उन्हें देखते ही सारी स्थिति समझ गया। निकटस्थ गाँवसे दूध-चिउड़ा लाकर उसने इनसे भोजन करनेका आग्रह किया। वह जानता था कि श्रीगम्भीरनाथने भोजनके सम्बन्धमें रास्तेमें किसीसे कुछ भी नहीं कहा होगा। श्रीगम्भीरनाथने भगवत्कृपा समझकर भोजन कर लिया। काशी पहुँचनेपर उन्होंने कुछ दिनोंतक गंगाजीके एक निर्जन तटवर्ती स्थानपर योगाभ्यास आरम्भ किया। वे नित्य गंगाजीमें स्नानकर भगवान् विश्वनाथका दर्शन करने जाया करते थे। भीड़से बहुत दूर रहते थे, इसलिये वे भिक्षा माँगने नहीं जाते थे। उनकी त्यागमयी वृत्तिने साधकों और जिज्ञासुओंको खींच लिया। योगी गम्भीरनाथने जन-सम्पर्कको साधनाका बहुत बड़ा विघ्न समझा। उन्होंने काशीजीको छोड़ दिया। वे प्रयाग आ गये। प्रयागमें गंगा-यमुनाके पुनीत संगमकी दिव्यतासे सम्प्लावित झूँसीतटकी एक गुफामें रहकर वे तप करने लगे। दैवयोगसे मुकुटनाथ नामक एक नाथयोगीने उनके भोजन तथा सेवा आदिकी व्यवस्था की। बाबा गम्भीरनाथ रात-दिन अनवरत उस गुफामें योगाभ्यास करने लगे। इस प्रकार प्रयागमें वे तीन

सालतक रह गये। उनका आध्यात्मिक स्तर ऊँचा हो गया। उन्होंने महती योगशक्ति प्राप्त की।

साधकको छः अवस्थाओंसे निकलना पड़ता है. वे कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूतकी अवस्थाएँ हैं। एक स्थानपर रहकर साधना करनेवालेको 'कुटीचक' विशेषणसे अलंकृत किया जाता है। 'बहूदक' अनेक स्थानोंमें घूम-घूमकर तप और साधना करनेवालेकी संज्ञा है। हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूतकी अवस्थामें साधक जीवन्मुक्ति, सद्-ज्ञान-प्राप्ति और आत्मसाक्षात्कारसे समृद्ध होता है। योगिराज गम्भीरनाथने अभीतक कुटीचकव्रतका अनुसरण किया था। प्रयागमें तप करनेके बाद उन्होंने 'बहूदक'-जीवन अपनाया। उन्होंने अकेले फिरनेका संकल्प किया। महायोगी गोरखनाथकी उक्ति—'ज्ञानके समान गुरु नहीं मिला, न चित्तके समान चेला मिला और न मनके समान मेल-मिलापवाला मिला; इसलिये गोरख अकेले फिरते हैं'—उनकी स्मृतिमें जाग उठी।

ग्यान सरीषा गुरू न मिलिया
चित्त सरीषा चेला।
मन्न सरीषा मेलु न मिलिया
तीथैं गोरख फिरै अकेला॥

(गोरखबानी, सबदी १८९)

उन्होंने परिव्राजक-जीवनमें प्रवेश किया। पूरे छः सालतक बाबा गम्भीरनाथ परिव्राजक-जीवनका रसास्वादन करते रहे। वे प्रायः पैदल भ्रमण करते थे। उन्होंने कैलास, मानसरोवर, अमरनाथ, द्वारका, गंगासागर तथा रामेश्वरम् आदि तीर्थोंका दर्शन किया। उन्होंने भगवती नर्मदाकी परिक्रमा चार सालमें पूरी की और अमरकण्टकपर अधिक समयतक रह गये। नर्मदा-परिक्रमाके समय उनके जीवनमें एक विलक्षण घटना घटी थी, जो उनकी अपार योगशक्ति और महती तपस्याकी परिचायिका है। बाबा गम्भीरनाथ नर्मदाकी परिक्रमा कर रहे थे। उनका मन एक तटीय रम्य स्थानमें लग गया। वहाँ एक कुटी थी। महात्मा गम्भीरनाथने उसी कुटीमें निवास किया। पहले दिन उन्हें एक बहुत बड़ा साँप दीख पड़ा। वह उनका दर्शनकर अदृश्य हो गया। दूसरे और तीसरे दिन भी प्रभात-कालमें बाबा गम्भीरनाथने उसको देखा, उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान न दिया। वे अपने गम्भीर चिन्तनमें तल्लीन थे। तीसरे दिन कुटीमें रहनेवाला एक ब्रह्मचारी, जो कुछ दिनोंके लिये बाहर था, आ गया। वह उस कुटीमें बारह सालसे निवास करता था। योगिराज गम्भीरनाथके आगमनसे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आप-बीती सुनायी कि 'मैं इस कुटीमें बारह सालसे रहता हूँ। इसीके निकट एक बहुत बड़े महात्मा सर्पके वेषमें रहते हैं। उन्हींके दर्शनके लिये मैं ठहरा हूँ।' महात्मा गम्भीरनाथने सर्प-दर्शनकी बात कही; ब्रह्मचारी आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा कि 'महाराज! आपका तपोबल स्तुत्य है, जिस कार्यको मैं बारह सालमें भी न कर सका, वह बिना किसी प्रयासके आपने कर दिखाया। आप धन्य हैं कि सर्प-वेषमें रहनेवाले महात्माने तीनों दिन आपपर कृपादृष्टि की।' महात्मा गम्भीरनाथने नर्मदा-परिक्रमा समाप्त की।

सम्वत् १९३७ वि० में योगी गोपालनाथने शिवधाम प्राप्त किया। महात्मा गम्भीरनाथने परिभ्रमण-कालमें इस घटनाको सुना। वे गुरुके प्रति आदर प्रकट करनेके लिये गोरखपुर आये। तत्कालीन महन्त श्रीबलभद्रनाथजीके विशेष आग्रहपर वे कुछ दिनोंतक मठमें रह गये। उसके बाद वे बिहार प्रदेशके गया जनपदके कपिलधारा नामक स्थानमें आकर तप करने लगे। गयाकी पहाड़ियोंमें चिरकालसे तपस्वी, योगी और संतजन अपना निवास बनाते आये हैं। गयानगरसे थोड़ी दूरपर अत्यन्त शान्त, रमणीय और निर्जन कपिलधारा स्थानमें योगी गम्भीरनाथने तबतक तप करनेका निश्चय किया, जबतक अवधूत अवस्थाकी प्राप्ति न हो जाय। अक्कू नामके एक व्यक्तिने उनके चरणोंमें श्रद्धा समर्पित की। उनकी भोजन-व्यवस्था तथा सेवा आदिका सहज अधिकार उसे प्राप्त हो गया। महात्मा गम्भीरनाथके पास कौपीन, एक कम्बल और खप्परके सिवा और कुछ भी न था। कुछ दिनोंके बाद नृपतिनाथ नामके एक श्रद्धालु योग-साधकने अक्कूका कार्य हलका कर दिया। नृपतिनाथने

योगी गम्भीरनाथकी सेवामें बड़ी तत्परता दिखायी। उनकी प्रसिद्धि बड़ी तेजीसे बढ़ने लगी। वे सदा शान्तचित्तसे ध्यानस्थ रहते थे। मौन उनकी वाणीका अलंकार था, संकेत उनके भावोंका प्रहरी था, निर्जनतामयी योग-साधना ही उनकी जीवन-संगिनी थी। प्रकृतिकी कमनीय कान्तिसे सम्पन्न कपिलधारा पहाड़ीकी दिव्यता उनकी योगलीलाकी रंगभूमि थी। रातमें दूसरी पहाड़ियोंपर तप करनेवाले सिद्ध महापुरुष और योगीजन उनका दर्शन करने तथा सत्संग प्राप्त करने आया करते थे। गयाके एक धनी पण्डा माधवलालने उनके आशीर्वादसे एक गुफाका निर्माण कराया। योगी गम्भीरनाथ उसी गुफामें प्रवेशकर तप करने लगे। दर्शकों और मिलनेवालोंकी भीड़ अपने-आप कम होने लगी। गुफामें कोई दूसरा व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता था। वे केवल एक पाव दूध नित्य लेते थे। प्रत्येक मंगलवारको थोड़ी देरके लिये वे गुफासे बाहर आकर दर्शकों और भक्तोंको दर्शन देकर तृप्त करते थे। तीन वर्षोंतक उन्होंने यही क्रम रखा। उसके बाद वे प्रत्येक अमावास्या और पूर्णिमाको गुफाके बाहर आने लगे। बारह सालके कठिन योगाभ्यासके बाद उन्होंने इस नियमको भी भंग कर दिया। उसके बाद वे तीन मासतक गुफासे बाहर न आये। श्रद्धालुओंकी विकलता बढ़नेपर उन्होंने दर्शन दिया। इस प्रकार कपिलधारामें उन्होंने 'अवधूत' अवस्था प्राप्त कर ली। उनकी पवित्र उपस्थितिसे उस तपोभूमिमें सत्य, शान्ति, अहिंसा और दिव्यताका साम्राज्य स्थापित हो गया।

कपिलधारा आश्रममें एक बार रातको कुछ चोर आये। उन्होंने आश्रमपर पत्थरोंके टुकड़े बरसाये। योगिराज एक कम्बल ओढ़कर कुटीके बाहर लेटे हुए थे। पत्थरके एक टुकड़ेसे उन्हें थोड़ी-सी चोट आयी। योगी नृपतिनाथ तथा दूसरे भक्तोंने चोरोंका पीछा करना चाहा। योगिराज गम्भीरनाथने चोरोंसे कहा कि 'साधुओंको तंग नहीं करना चाहिये।' उन्होंने बड़े प्रेम और मधुरतासे कहा कि 'कुटीका दरवाजा खुला हुआ है; तुम भीतर जाकर जो कुछ भी आवश्यक समझो, ले लो।' उनके आदेशसे नृपतिनाथने दरवाजा खोल दिया। चोर आश्चर्यचकित हो गये। वे बाबाके चरणोंपर गिर गये और बोले कि 'महाराज! हम गरीब हैं, हमारे परिवारवाले कई दिनोंसे भूखों मर रहे हैं!' बाबाने कहा, 'वत्स! मैं तुम्हारी विवशता समझता हूँ। तुम जब चाहो, कुटीसे आकर भोजन ले जा सकते हो। तुम्हें कोई न रोकेगा।' चोरोंने अपनी आवश्यकताके अनुसार थोड़ा-बहुत सामान ले लिया। बाबाकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाकर वे चल पड़े। दूसरी बार आश्रममें आनेपर उनके जीवनमें बहुत बड़ा परिवर्तन देखा गया। वे चोर नहीं, सत्यवादी हो गये। योगिराजकी करुणाने उनकी कृतज्ञताको श्रद्धा और भक्तिमें रूपान्तरित कर दिया। बाबा प्रेम, माधुर्य, अहिंसा और शान्तिके साकार-सजीव विग्रह थे। शान्तिको ही वे बहुत बड़े चमत्कारकी वस्तु स्वीकार करते थे।

परिव्राजक-कालमें महाराणा उदयपुर तथा महाराजा काश्मीर आदिने बड़ी चेष्टा की कि योगिराजकी चरण-धूलि राजप्रासादमें पड़ जाय; पर ऐसा कभी सम्भव नहीं हो सका। बाबाके प्रसिद्ध सेवक माधवलाल पण्डाने बड़ा प्रयत्न किया कि एक क्षणके लिये भी बाबा उसके घर चलें; पर बाबा गम्भीरनाथ अपने नियमपर अडिग रहे। एक बार उनका निजी सेवक बहुत बीमार पड़ गया। उसका भाई मुन्नी दौड़ता हुआ बाबाके पास आया; आँखोंमें अश्रु भरकर उसने कहा कि 'महाराज! अक्कूका अन्तिम समय है, उसे जीवन प्रदान कीजिये अथवा चलते समय उसे अपनी चरण-धूलिसे आशीर्वाद दीजिये; वह आपके दर्शनके लिये विकल है।' करुणा-समुद्र परम शान्तिमय बाबा गम्भीरनाथ आसनसे उठ पड़े; वे अक्कूके घर आये। शरीर ठण्डा हो रहा था, प्राण निकलनेवाले ही थे कि बाबाका दर्शन करते ही अक्कूकी चेतना लौट आयी; बाबाने उसे प्राण-दान दिया; स्वस्थ होनेपर वह बाबाकी सेवामें पुनः संलग्न हो गया। बाबा गम्भीरनाथकी महिमा अकथनीय है। जिस समय कपिलधारा-आश्रममें योगिराज गम्भीरनाथ तप कर रहे थे, उसी समय महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी आकाशगंगा पहाड़ीपर अपने कुछ भक्तोंके साथ साधनामें तल्लीन थे। वे बाबाकी योगशक्तिसे बहुत प्रभावित थे

और उनके चरणोंमें अडिग श्रद्धा रखते थे। वे कभी-कभी योगिराजका दर्शन करने कपिलधारा आया करते थे और प्राय: आधी रातके समय पधारकर दो-एक घण्टे उनके सम्पर्कमें रहकर सत्संग और भजनकी सात्त्विकता और मधुरताका आस्वादन करते थे। महात्मा गम्भीरनाथ आधी रातमें सितार बजाकर भगवान्‌को भजन समर्पित किया करते थे। उनकी संगीत-माधुरी और दिव्य सितार-वादन-कलासे हिंसक जीव-जन्तु दिव्य प्रेमोन्मादमें अहिंसक बनकर उनकी चरण-धूलिके संस्पर्शसे अपने-आपको परम तृप्त मानते थे। कभी-कभी कपिलधारा-पहाड़ीपर बाबाके सितार-वादन और भजनसे आकृष्ट होकर महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी आया करते थे। एक दिन रातकी निर्जनतामें बाबा गम्भीरनाथ पहाड़ीपर सितार बजाते हुए घूम रहे थे, भगवान्‌के चरणोंमें हृदयका मधुर संगीत समर्पित कर रहे थे। चारों ओर ज्योत्स्ना फैली हुई थी। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीने शिष्योंसे कहा, 'अहा! कितना मधुर संगीत बाबा गम्भीरनाथ अपने आराध्य देवके चरणोंमें अर्पित कर रहे हैं। बाबा साक्षात् प्रेमरूप हैं, ऐसे योगीका दर्शन भारतवर्षमें इस समय दुर्लभ है। बाबामें सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी शक्ति है। वे क्षणमात्रमें संसारका सृजन और संहार कर सकते हैं। उन्होंने प्रेमका माधुर्य इस तपोभूमिके कण-कणमें भर दिया है।'

सम्वत् १९५० वि०में बाबा गम्भीरनाथ कपिलधारा-आश्रमसे प्रयाग कुम्भमेलामें पधारे हुए थे। उनकी गम्भीर मुद्रा और शान्ति तथा तपकी माधुरीने दर्शकोंका मन सहजमें ही मुग्ध कर लिया। प्रत्येक समय उनके निवास-स्थानपर संतों-साधुओंकी भीड़ लगी रहती थी। अपने शिष्योंके साथ महात्मा विजयकृष्ण उनका दर्शन करने आये थे। महात्मा विजयकृष्णके शिष्य मनोरंजन ठाकुरने कुम्भकी एक घटनाका वर्णन किया है, जिससे बाबाकी तपस्या और शान्तिमयी त्याग-वृत्तिका पता चलता है। एक धनी व्यक्तिने योगिराजके हाथसे सौ कम्बलोंका वितरण कराना चाहा। बाबा उस समय गम्भीर चिन्तनमें थे। थोड़ी देरके बाद उन्होंने आँख खोली, अपने सामने कम्बलोंका ढेर देखा। उन्होंने हाथसे वितरण करनेका संकेत किया और क्षणमात्रमें दीन-दुखियों और असहायोंको कम्बल वितरित कर दिये गये। कुम्भसे लोगोंके विशेष आग्रहपर वे गोरखनाथ-मठके अध्यक्षका उत्तरदायित्व स्वीकारकर गोरखपुर आये और जीवनके अन्तिम क्षणतक उन्होंने अपना कार्य बड़ी सात्त्विकता और पवित्रतासे सम्पादित किया। नाथ-सम्प्रदायके तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ योगीके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। वे जीवन्मुक्त-अवस्थामें पहुँच गये थे। वे साधु-मण्डलीमें सिद्ध पुरुषके रूपमें विख्यात थे। गोरखनाथ-मठमें आगमनके बाद लोग उन्हें 'बूढ़ा महाराज'के विशेषणसे समलंकृतकर उनके प्रति श्रद्धा और आदर प्रकट करते थे। उनके आगमनसे ऐसा लगता था मानो गोरखनाथकी तपोभूमिमें हठ योग, लययोग और राजयोगने ही मूर्ति धारणकर प्रवेश किया हो।

गोरखपुरमें गोरखनाथ-मठ-निवासकालमें एक बार उन्होंने अद्भुत यौगिक चमत्कार दिखाया था। एक विधवाका लड़का बैरिस्टरीका प्रमाणपत्र प्राप्त करने लन्दन गया था। तीन-चार माससे उसके सम्बन्धमें कोई समाचार न पाकर माँकी चिन्ता बढ़ गयी। उसने बाबा गम्भीरनाथकी कृपादृष्टिका दरवाजा खटखटाया। उस समय राजकीय विद्यालयके प्रधानाचार्य रायसाहब अघोरनाथ अपने सहकर्मी अटलबिहारी गुप्तके साथ बाबाका दर्शन करने आये थे। विधवाको फूट-फूटकर रोते देख योगिराज गम्भीरनाथ एक कोठरीमें चले गये, दरवाजा बन्द कर लिया। बुधवार था। आधे घण्टेके बाद उन्होंने बड़ी चिन्तनमयी गम्भीर मुद्रामें कहा कि 'तुम्हारा लड़का स्वस्थ और सुरक्षित है।...वह सोमवारको पहुँच जायगा।...अगले बुधवारको एक नौजवान रायसाहब अघोरनाथकी कोठीपर उनको प्रणाम करने गया। दैवयोगसे अटलबिहारी गुप्त भी वहीं उपस्थित थे। रायसाहबने गुप्तसे कहा कि 'ये महाशय उसी विधवाके पुत्र हैं, जो पिछले बुधवारको बाबा (गम्भीरनाथ)-के पास गयी थी।' नौजवान रायसाहबकी बातका आशय समझ नहीं

सका। रायसाहब उसको साथ लेकर बाबाके पास दर्शन करने गये। अटलबिहारी गुप्त भी साथ थे। नौजवानने बाबाके चरणपर सिर रखकर प्रणाम किया। उसने तत्क्षण ही बाबासे पूछा कि 'आप कब आये? मैं बम्बईमें उतरते ही इम्पीरियल मेलमें सवार हुआ, पर आपको मैंने नहीं देखा।' उसने रायसाहबसे कहा कि 'हमारे जहाजको बम्बई पहुँचनेमें एक दिन शेष रह गया था, मेरे कैबिनके सामने बाबाजी खड़े थे। भारतीय साधुको देखकर बातचीत करनेकी उत्सुकतासे मैंने कैबिनके बाहर आकर बाबासे पाँच मिनट बात की। उसके बाद बाबा अदृश्य हो गये। न तो मैंने उनको स्टीमरमें देखा, न रेलगाड़ीमें ही उनका दर्शन हुआ।' अटलबिहारी गुप्तके समय पूछनेपर उसने कहा कि 'पिछले बुधवारके शामकी बात है।' समय ठीक वही था, जब बाबाने आधे घण्टेके लिये कोठरीका दरवाजा बन्द कर लिया था। इस घटनाका विवरण अटलबिहारी गुप्त महोदयने अपनी बँगला पुस्तक 'मृत्यु और पुनर्जन्मके बाद' में विस्तारसे दिया है। बाबा गम्भीरनाथको ऊँची-से-ऊँची यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं, पर उनके प्रदर्शनको वे योग-साधनाके क्षेत्रमें बहुत बड़ा विघ्न मानते थे। वे दूसरोंको किसी तरहका उपदेश देनेमें भी अमित संकोच करते थे।

महात्मा गम्भीरनाथ योगमानव थे। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि 'यही मन शिव है, यही मन शक्ति और पाँच तत्त्वोंसे निर्मित जीव है। शिव, शक्ति और जीव—सब-के-सब एकाकार हैं। मायाके संयोगसे ही ब्रह्म मनके रूपमें अभिव्यक्त होता है। मनसे ही पंचभूतात्मक शरीरकी सृष्टि होती है। मनको उन्मनावस्थामें लीन करनेसे साधक सर्वज्ञ हो जाता है।' बाबा गम्भीरनाथ योगरहस्यके सर्वमान्य मर्मज्ञ थे। उन्होंने आदिनाथ—शिवद्वारा प्रवर्तित तथा गुरु गोरखनाथद्वारा प्रचारित योगकी साधना की। वे मायाके बन्धनसे पूर्ण मुक्त सिद्ध पुरुष थे। गोरखनाथजीने अपनी साधनाके सम्बन्धमें एक स्थलपर कहा है—

बाहरि न भीतरि, नेड़ा न दूर,
खोजत रहे ब्रह्मा अरु सूर।
सेत फटिक मनि हारै बीघा,
इहि परमारथ गोरख सीधा॥

(गोरखबानी, सबदी १७४)

परमात्मतत्त्व न बाहर है न भीतर है, न निकट है न दूर है। ब्रह्मा और सूर्य उसे खोजते ही रह गये, किंतु उसका रहस्य न पा सके। श्वेत स्फटिकमणिको हीरेने बेध लिया, ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया, इसी परमार्थके लिये मैं (गोरखनाथ)-ने साधना सिद्ध की।' उनकी योग-परम्पराका अनुगमन करनेवाले योगिराज गम्भीरनाथने इसी परमार्थ—योगतत्त्वकी सिद्धिके राज्यमें आधिपत्य प्राप्त किया। उन्होंने नाथयोगके सिद्धान्तके अनुसार शिव और शक्तिकी एकात्मताका योगके माध्यमसे अनुभव किया। योगिराज बाबा गम्भीरनाथने सदा कानोंमें कुण्डल और वक्षपर नाद धारण किया। उन्होंने योगस्थ होकर दिव्य परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार किया। वैराग्य उनकी योग-साधनाका प्राण था। वे कहा करते थे कि 'सद्गुरु वह है, जो आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है और दूसरोंको आत्मनिष्ठासे सम्पन्न करता है।' नाम-जपमें उनकी बड़ी निष्ठा थी। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीकी उक्ति है कि 'मुझे भगवन्नाम-निष्ठा बाबा गम्भीरनाथकी कृपासे प्राप्त हुई।' वे ज्ञानी एवं हठयोगी थे। योगिराजकी श्रीमद्भगवद्गीतामें अपूर्व श्रद्धा थी। वे मायातीत, त्रिगुणातीत योगी थे। वे सत्यान्वेषक थे। वे नाम-जप, कीर्तन और भजन आदिके लिये अपने शिष्यों और भक्तोंको विशेष अवसरोंपर प्रोत्साहित किया करते थे। गीताके सम्बन्धमें उनकी उक्ति है कि 'यह सभी युगोंके लिये सम्मान्य है। सत्यके अन्वेषकोंके लिये एक गीता ही बहुत है। यह सार्वजनिक तथा सनातन शास्त्र है।' भगवच्छरणागतिके सम्बन्धमें उनकी उक्ति भी थी कि 'अहंता और ममताका परित्यागकर ईश्वरके चरणोंपर समर्पित हो जाना चाहिये। वे योग-क्षेमका वहन करते ही हैं। उनसे केवल सत्य और प्रेमकी ही माँग करनी चाहिये।' वे भगवन्नाम-साधनापर बड़ा जोर देते थे। उनकी यह घोषणा थी कि 'भगवान्‌के नामसे सब कुछ हो जायगा।' वे कहा करते थे—'रूप बहुत हैं, स्वरूप एक ही है, सब परमात्मस्वरूप

हैं। मुक्ति-प्राप्तिके लिये साधना और अधिकारकी बड़ी आवश्यकता होती है। शिष्यके ही सत्प्रयत्नसे यह सम्भव है, गुरु तो साधना और सिद्धिका मार्ग-दर्शन करा देते हैं।'

बाबा गम्भीरनाथ सनातनधर्मके अनुरूप आचरण बनानेको बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनकी उक्ति है कि 'सनातनधर्म शाश्वत, विश्वव्यापी, अपौरुषेय और आदि-सत्यसे परिव्याप्त है।' जब कोई व्यक्ति उनसे उपदेश देनेकी प्रार्थना किया करता था, तब वे बड़ी विनम्रतासे कहा करते थे कि 'मैं वास्तवमें कुछ भी नहीं जानता, मेरे पास कोई उपदेश नहीं है। मैं क्या शिक्षा दे सकता हूँ।' वे ऐसे अवसरपर कहा करते थे कि 'सदा सत्य बोलना चाहिये। 'अहं'से नहीं चिपकना चाहिये। दूसरोंको कभी बुरा-भला नहीं कहना चाहिये। समस्त धर्मों और मत-मतान्तरोंका आदर करना चाहिये। भिखारियों, दीन-दुखियों और असहायोंका बड़े प्रेमसे सत्कार करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि इस प्रकार हम ईश्वरकी ही पूजा कर रहे हैं।'

विक्रमीय बीसवीं शताब्दीमें योग-सिद्धिके क्षेत्रमें उनका महत्त्व असाधारण है। उन्होंने नाथ-सम्प्रदायके योग-सिद्धान्तका फिरसे प्राकट्य किया। उनकी विशिष्टता यह थी कि उन्होंने योगके प्रकाशमें सत्य और भगवान्‌का साक्षात्कार किया। समस्त जगत्‌के कार्योंको वे ईश्वरकी लीला समझते थे। वे कहा करते थे कि 'आत्माका विचार करते रहना ही तपस्या है।' वे सदा योगस्थ रहते थे। वे सद्‌गुरु थे। उनकी उक्ति है—'जो शिष्यको बन्धनसे मुक्त कर देता है, वही सद्‌गुरु है।'

जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्हें मोतियाबिन्द हो गया था। वे उसे ठीक करानेके लिये कलकत्ता गये हुए थे। डॉक्टर मानरडने उस रोगको ठीक कर दिया। बाबा गम्भीरनाथको देखकर मानरडने कहा था—'अरे, ये तो साक्षात् ईसाकी ही तरह दीख पड़ते हैं।'

योगिराजने गोरखपुरमें सम्वत् १९७५ वि० की चैत्र कृष्ण त्रयोदशीको सवा नौ बजे प्रातः परमधामकी यात्रा की। गोरखनाथ-मन्दिरके सन्निकट ही उनका समाधि-मन्दिर है, जो शाश्वत सत्य और चिरन्तन शान्तिका दिव्य प्रतीक है। उसमें उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। नित्य नियमपूर्वक प्रतिमाकी पूजा-आरती होती है। शिष्योंको कभी-कभी स्वप्नमें दर्शन देकर वे उनका पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। योगिराज बाबा गम्भीरनाथ योग, ज्ञान, तपस्या और भक्तिके सजीव प्रतीक थे।

बाबा गम्भीरनाथजीके वचनामृत

तीर्थ-पर्यटन, देवता-दर्शन, साधु-सेवा आदि सभी पुण्यकर्मोंको निष्कामभावसे भक्ति-साधनाका अंग समझकर सम्पादन करना चाहिये। किसी तीर्थमें कौन देवता कितना जाग्रत् है, कहाँ, किस देवताकी कितनी शक्ति और ऐश्वर्य है, किस तीर्थमें जानेसे या किस देवताका दर्शन और पूजन करनेसे कितना और कौन-सा विशेष फल प्राप्त होगा—ऐसे हिसाब-किताबकी बात मनमें लगाना ही अनुचित है। तीर्थ-पर्यटन और देवता-दर्शनसे भगवान्‌की सेवा होती है, देह-मनका पाप और मलिनता धुल जाती है एवं अन्तःकरणमें सुप्त और दुर्बल सद्‌वृत्तियाँ उद्‌बुद्ध और सतेज होकर असद्‌वृत्तियोंको विनष्ट कर देती हैं—ऐसा निष्कपट विश्वास लेकर तीर्थ और देवताके शास्त्रोक्त माहात्म्यका स्मरण करते हुए कर्तव्य-बुद्धिसे संयतचित्त होकर श्रद्धा-भक्तिके साथ यथाविधि तीर्थ-पर्यटन, देवतार्चन आदि अनुष्ठान करना चाहिये। मनमें कोई सन्देह आने नहीं देना चाहिये। किसी विशेष प्रत्यक्ष फलप्राप्तिकी आकांक्षा रखना भी उचित नहीं है। भगवत्सेवा बुद्धिसे शास्त्र-वाक्योंका अनुसरण करते हुए इन कार्योंको करना चाहिये। जिसको जो दान दिया जाता है, वह भगवान्‌को ही दिया जा रहा है और भगवान् ही उसे ग्रहण कर रहे हैं—ऐसी धारण रखकर श्रद्धाके साथ दान करना चाहिये एवं जिससे जो ग्रहण किया जाता है, वह भी भगवान्‌का ही दान है—ऐसा समझकर ग्रहण करना चाहिये।

भारतमें गायका महत्त्व

(श्रीरामलालजी गुप्त)

हम अपने पूर्वजोंसे यह बात सुनते चले आ रहे हैं कि 'पृथ्वी बैलकी सींगके सहारे खड़ी है।' बचपनमें हम इसे केवल बच्चोंकी गप्प-सी ही समझा करते थे। पर इसके अन्दर जो गूढ़ रहस्य छिपा है, उसको हम उस समय समझनेमें सर्वथा असमर्थ थे, परंतु आज इस वाक्यपर हम जितना अधिक विचार करते हैं, उतना ही अधिक इसे ठीक और रहस्यपूर्ण पाते हैं। हमारी इस पृथ्वीपर रहनेवाले सभी जीवधारियोंका जीवन पृथ्वीकी उपजपर ही निर्भर है और उपज, यदि ध्यानसे देखा जाय, तो बैलके ही अस्तित्वपर आश्रित है।

जिन गौओंके अमृतोपम दूधके आधारपर मानव-समाज जीवित रहा है, जिन बैलोंके कारण हमारे खेतोंको बढ़िया खाद मिलती आयी है, जिनके कारण खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं, जो बैल भार-वहन करनेमें सबसे उत्तम साधन हैं और जो कच्चे-पक्के, ऊँचे-नीचे रेतीले और कीचड़ आदिवाले सभी स्थानोंपर काम देते हैं, वे सचमुच ही समस्त पृथ्वीको अपने ऊपर धारण कर रहे हैं।

प्राचीन भारतके ऋषि-महर्षि और राजा-महाराजा गाय और इसकी संतानसे होनेवाले लाभोंको भलीभाँति समझते थे। इसीलिये वे गायकी पूजा और आदर-प्रतिष्ठा माताके समान किया करते थे। गायकी रक्षाके लिये हमारे पूर्वज अपने प्राणोंपर खेल जाना भी एक साधारण-सी बात समझा करते थे। वेदोंमें भी गायको अनेक स्थानोंपर अघ्न्या (अवध्य) कहा है। देशकी आर्थिक अवस्थाका आधार भी गाय-बैलको ही माना जाता था। मुसलमान बादशाहोंके राज्यकालमें गोहत्यापर पूर्ण रोक थी। गोहत्या करनेवालेको हाथ काटनेतकका भी दण्ड दिया जाता था। अंग्रेजोंने देशके लोगोंको निर्बल और निकम्मा करनेके लिये दूध-घीको समाप्त करने और परस्पर वैमनस्य फैलानेके लिये ही गो-वधको बढ़ावा दिया था।

गायके दूध-दहीके लाभ—गौकी इतनी महत्ता इससे होनेवाले लाभोंको दृष्टिमें रखते हुए दी गयी है। इसका दूध अमृतके समान माना गया है। इसके दूधमें वे सभी पदार्थ विद्यमान हैं, जो एक मानवके बच्चेके पालन-पोषणके लिये आवश्यक हैं। गौका दूध अनाज भी है और ओषधि भी। आजके विज्ञानने परीक्षणोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि गायके दूधमें मानवके अनेक रोगों—जैसे गलेके रोग, चेचक, क्षय-रोग, हृदयके रोग और पाण्डुरोग आदिको दूर करनेकी शक्ति है। गायके दूधका दही जिगर और आमाशयके रोगोंके लिये बहुत ही लाभदायक है।

महात्मा गाँधी अपनी पुस्तकमें डॉक्टर सान्तराका (जो कि कोढ़की बीमारियोंके विशेषज्ञ थे) उद्धरण देकर लिखते हैं कि 'गायके दूधका प्रयोग कोढ़-जैसे रोगोंमें बहुत लाभदायक रहता है।' इसी पुस्तकमें एक-दूसरे स्थानपर आप लिखते हैं कि 'गायका दूध बच्चों और बौद्धिक कार्य करनेवालोंके लिये बहुत अधिक उपयोगी होता है। गौके दूधका सेवन करनेसे शारीरिक पोषणके साथ ही स्फूर्ति, सात्त्विकता, वीर्य और बौद्धिक शक्तियोंका विकास भी खूब होता है। इसका घी आयुको बढ़ानेवाला है।'

गोबर और मूत्र कीटाणुनाशक—गायके न केवल दूध और दही ही दवाइयोंका काम देते हैं, अपितु इसका मूत्र और गोबर भी बीमारियोंकी रोक-थाममें सहायक सिद्ध होते हैं। जर्मनके एक विद्वान् डॉक्टर सीमंजका कहना है कि गौके मूत्र और गोबरका लेपन करनेसे घरमें मच्छर और रोगोंके दूसरे कीटाणु बढ़ने नहीं पाते।

दूधसे अनाजकी कमीकी पूर्ति—भोजनमें दूध-दहीके अभावके कारण ही हमें अधिक अनाज खाना पड़ता है। यदि हमें दूध-दही पर्याप्तमात्रामें मिलें, तो अनाजकी लागत अपने-आप ही कम हो जायगी। तब

हमें बाहरसे अनाज मँगवाना नहीं पड़ेगा।

जब पानी माँगनेपर दूध मिलता था— जबतक हम गौकी महत्ता और इससे होनेवाले लाभोंसे परिचित रहे, तबतक हमारे देशमें दूध-घीकी नदियाँ बहती रही हैं और अनाजके भण्डार भरे रहते थे। अनेक विदेशी लेखकोंके लेखोंसे इस बातका पता चलता है कि 'यहाँ दूधको मूल्य लेकर बेचना पाप समझा जाता था। यदि कोई अतिथि कभी किसी गृहस्थके घरसे पानी माँगता था तो उसे पानीके स्थानपर दूध ही दिया जाता था।' दूध-घीकी अधिकताके कारण यहाँके लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट, पराक्रमी और बुद्धिमान् तथा लम्बी आयुवाले होते थे। तब यहाँ गो-वंशका पालन-पोषण ठीक ढंगसे होता था और प्रत्येक व्यक्तिको गायका दूध और घी पर्याप्त मात्रामें मिलता था।

गाय-बैलोंकी संख्या बहुत अधिक होनेके कारण खेतोंके लिये उनके गोबर-मूत्रकी अच्छी खाद भी बहुत अधिकमात्रामें मिल जाती थी। उसके कारण अनाजकी उपज भी बहुत अधिक होती थी। तब यहाँसे अनाज दूसरे देशोंको बाहर भेजा जाता था, किंतु आज हमें अपनी जरूरतके लिये अनाज दूसरे देशोंसे मँगवाना पड़ रहा है। दूधके डब्बे भी हमें अपने बच्चोंके लिये दूसरे देशोंसे मँगवाने पड़ रहे हैं और हम इस बातपर ही गौरव अनुभव कर रहे हैं कि हमें रूस और अमेरिकासे बहुत भारी संख्यामें जूते भेजनेके आर्डर मिल रहे हैं! क्या हमने कभी यह सोचा है कि जो देश आज चाँदपर जा रहे हैं, क्या वे अपने लिये जूते नहीं बना सकते? वे भोले नहीं हैं। वे अपने देशके पशुधनका नाश नहीं करना चाहते। ऐसे हम ही हैं, जो अपने देशके पशुधनका बुरी तरहसे नाश करते चले जा रहे हैं। इसीका परिणाम है कि लोगोंका स्वास्थ्य बिगड़ गया है। आयु कम हो गयी है और बुद्धिका बुरी तरह ह्रास हो रहा है।

ट्रैक्टर बनाम बैल— आज मशीनरीके इस युगमें कहा जा सकता है कि जब ट्रैक्टरके द्वारा खेती-बाड़ी हो सकती है तो बैलकी इतनी महत्ता नहीं रहती, किंतु अब प्रयोगोंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि ट्रैक्टर बैलोंका स्थान नहीं ले सकते। एक तो ट्रैक्टरोंके लिये बड़े-बड़े फार्मोंकी जरूरत है, ये तो छोटे फार्मोंके दुश्मन हैं। दूसरे ट्रैक्टर प्रति एकड़ उपजमें वृद्धि नहीं करते, अपितु ये काम करनेवाले मनुष्योंकी संख्या अवश्य ही कम कर देते हैं और भारतवर्षमें काम करनेवालोंकी कमी नहीं है। वे पहले ही बहुत भारी संख्यामें बेकार हैं। बैलोंद्वारा खेती-बाड़ी करके किसान उपजको बहुत बढ़ा सकता है।

इसके अतिरिक्त ट्रैक्टरोंके बनवानेके लिये बहुत अधिक संख्यामें फौलादकी जरूरत पड़ती है, फिर इनकी मरम्मत आदिका भी झंझट रहता है। चलानेके लिये डीजल ऑयलकी भी जरूरत है जो कि अधिकतर विदेशोंसे ही मँगवाना पड़ता है। एक निश्चित समयके पश्चात् ट्रैक्टर सर्वथा बेकाम हो जायगा, फिर नया खरीदना पड़ेगा, जबकि गाय-बैल स्वयं ही अपनी संख्याको बढ़ाते रहते हैं। भारतमें खेतीके लिये आधुनिक मशीनरी और ट्रैक्टर प्रयोग करनेकी सलाह देकर खेती-बाड़ीके लिये बैलकी जरूरतको कम नहीं किया जा सकता। भारत-सरकारके प्लानिंग कमीशनके सदस्य प्रोफेसर राजकिशनने कहा था कि यदि हमें देशकी बेकार आबादीको काम दिलाना है, तो फिर खेतीके मशीनीकरणके लिये कोई स्थान नहीं है। ट्रैक्टरोंके द्वारा खेती केवल उन्हीं स्थानोंपर की जानी चाहिये, जो ऊबड़-खाबड़ हों। उन्होंने और कहा कि प्लानिंग कमीशनकी दृढ़ सम्मति है कि खेतीके पुराने तरीके ही प्रयोगमें लाये जाने चाहिये और उनके स्थानपर मशीनी-खेतीका कमीशन प्रबल विरोध करता है।'

गोबरकी खाद बनाम बनावटी खाद— गायों-बैलोंके गोबर और मूत्रसे जो खाद स्वयमेव तैयार होती रहती है, वह भूमिकी उपजाऊ शक्तिको बहुत अधिक बढ़ा देती है, जिससे उपजमें पर्याप्त वृद्धि तो होती ही है, साथ ही अनाजकी पोषक-शक्ति भी बढ़ती है। जबकि बनावटी खाद भूमिको खोखला कर देती है और

उसकी उपजाऊ शक्तिको भी कम कर देती है और अनाजकी पोषक-शक्ति भी कम हो जाती है।

जिस खेतमें पशुओंके गोबर और मूत्रसे तैयार हुई खाद पड़ती है, उस खेतको हानि पहुँचानेवाले कीड़े-मकोड़े बिलकुल पैदा नहीं होते। गाय-बैलके गोबर और मूत्रमें ऐसे कीड़ों-मकोड़ोंको नाश करनेकी अद्भुत शक्ति होती है।

बैलोंके द्वारा जहाँ हम खेतकी उपज प्रति एकड़ बढ़ा सकते हैं, वहाँ ट्रैक्टरोंके खरीदने और उनकी मरम्मत तथा डीजल-ऑयलके खर्चसे भी बच सकते हैं और खाद तैयार करनेकी फैक्टरियोंपर भी हमें अरबों रुपये व्यय करनेकी जरूरत नहीं रहेगी।

ठाँठ गायोंका प्रश्न—कुछ लोगोंका कहना है कि ठाँठ अर्थात् जो गायें दूध देना बन्द कर चुकी हों, उनकी हत्यापर रोक नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वे अनुपयोगी हैं। यदि आपने सृष्टिकी सभी अनुपयोगी वस्तुओंको समाप्त करनेका ठेका ले लिया है, तो ऐसे बहुत-से काम करने पड़ेंगे, जिन्हें करनेसे हमें कोई पागलके सिवा कुछ नहीं कहेगा। गाय तो कभी अनुपयोगी होती ही नहीं। बिसूखी होनेपर भी वह घास-फूस खाकर हमें गोबर और मूत्रके रूपमें अमूल्य खाद प्रदान करती रहती है। उसका चमड़ा आदि तो उसकी प्राकृतिक मृत्युके पश्चात् भी काममें लाया जा सकता है।

अनुपयोगी (सूखे) पशुओंके नामपर सैकड़ों दुधारू पशुओंका वध हो जाता है। इनका वध तभी रोका जा सकता है, जब कि गो-वंशके वधपर पूर्ण रूपसे रोक लगायी जाय।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिसे पूर्व हमें महात्मा गाँधी, लोक-मान्य तिलक, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, डॉ० अनसारी, हकीम अजमलखाँ तथा अन्य सभी नेताओंने बड़ी आशाएँ दिलायी थीं कि 'आजादी मिलनेपर गो-हत्या तुरंत बन्द कर दी जायगी।' महात्मा गाँधी तो भारतके लिये गायके महत्त्वको स्वराज्यसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे।

स्वतन्त्र भारतके संविधानकी धारा ४८में स्पष्टरूपसे ये शब्द अंकित हैं—'राज्य गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंकी नस्लके परिरक्षण और सुधारनेके लिये तथा उनके वधका प्रतिरोध करनेके लिये अग्रसर होगा।'

आशा की जाती है कि अब सारे भारतवर्षमें गो-वंशके वधपर पूर्णरूपसे कानूनन रोक लगाकर भारतको समृद्ध और खुशहाल बनाया जायगा।

गोवध बंद हो

(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)

लोक समस्तकी है हितकारिणी, सिद्धि-समृद्धिकी सुन्दर नींव है।
पावन है शुचि पावन नाम-सी, है सुरभी सुर शान्त अतीव है॥
सेवा अशेषकी साध विशेष ले, संसृतिमें प्रकटी नतग्रीव है।
है वसुधा पै सुधाकी विधायिनी, मूर्तिमती ममता ही सजीव है॥ १॥
है पशु, किंतु न है पशुता, शुचिताका मनोरम भाव लिये है।
अन्तसका रस बाँट रही जग, जाग्रत् जीवन-चाव लिये है॥
मुक्त सभीके लिये उर है, न किसीके लिये भी दुराव लिये है।
गौरी-गिराकी उपासना-सी शुभ, पुण्यदा पुण्य प्रभाव लिये है॥ २॥
दूध पिलाती जिलाती है जीव जो, साथ नहीं उसके छल-छंद हो।
है जिसकी हर श्वास परार्थ, न दे दुख कोई उसे मतिमंद हो॥
पूज्य है जो जननीके समान, नहीं उसके हित घातक फंद हो।
देशकी है ये पुकार अमन्द कि गोवध बंद हो, गोवध बंद हो॥ ३॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

ब्रह्मज्ञान, पराभक्ति, भगवान्‌की लीला

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला था। उत्तर लिखनेमें बहुत देर हो गयी, इसके लिये क्षमा करें। व्यतिरेक और अन्वय—दोनों प्रकारसे ही ब्रह्मज्ञानकी साधना होती है। आजकल अवश्य ही ऐसी प्रथा-सी हो गयी है कि लोग वेदान्तका अर्थ ही व्यतिरेक-साधना करते हैं। वे 'नेति-नेति' कहकर जगत्‌को स्वप्न, गन्धर्वनगर, शशशृंग और रज्जुमें सर्प आदिकी भाँति सर्वथा असत् बतलाकर सबका अस्वीकार तो करते हैं, परंतु सब कुछको एकमात्र नित्य सच्चिदानन्दघन-स्वरूप मानकर ब्रह्मका स्वीकार नहीं करते। इसलिये कभी-कभी जगत्‌का बाध करते-करते ब्रह्मका भी बाध हो जाता है और मनुष्यका चित्त एक जड़ शून्य भूमिकापर जा पहुँचता है, जगत् वस्तुतः न कभी था, न होगा—यह सत्य है, इसके साथ यह भी सर्वथा सत्य है कि जगत्‌के रूपमें जो कुछ भी भास रहा है, वह तथा जिसको भासता है, वह भी ब्रह्म ही है। जगत्‌को सर्वथा वस्तुशून्य समझना 'व्यतिरेक' साधना है और चेतनाचेतनात्मक समस्त विश्वमें एक चेतन अखण्ड परिपूर्ण ब्रह्मसत्ताका अनुभव करना 'अन्वय' साधना। दोनों साधनाओंके समन्वयसे जो '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन**' तत्त्वकी प्रत्यक्षानुभूति होती है, वही ब्राह्मी स्थिति है।

यह श्रीभगवान्‌का सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूप है। इसके जान लेनेपर ही समग्र पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण-की प्रेमलीला या व्रजलीलाके समझनेका अधिकार प्राप्त होता है। दिव्य हृदय और दिव्य नेत्रोंके बिना व्रजलीलाके दर्शन नहीं हो सकते। विविध साधनाओंके द्वारा हृदय जब समस्त संस्कारोंसे शून्य होकर शुद्ध सत्त्वमें प्रतिष्ठित हो जाता है और जब सम्पूर्ण विश्वमें एक अखण्ड अनन्त समरस सर्वव्यापक सर्वरूप अव्यक्त ब्रह्मकी साक्षात् अनुभूति होती है, तभी प्रेमकी आँखें खुलती हैं तभी भगवान्‌की लीलाके यथार्थ और पूर्ण दर्शनकी योग्यता प्राप्त होती है और तभी प्रेमी भक्तका भगवानके साथ पूर्णैक्यमय मिलन होता है। यही ज्ञानकी परा निष्ठा है। '**निष्ठा ज्ञानस्य या परा।**' श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

'साधक जब प्रसन्न-अन्तःकरण होकर ब्रह्ममें स्थित हो जाता है, जब उसे न तो किसी बातका शोक होता है और न किसी बातकी आकांक्षा ही। समस्त प्राणियोंमें उसका समभाव हो जाता है, तब उसे मेरी पराभक्ति—पूर्ण प्रेम प्राप्त होता है। और उस पराभक्तिके द्वारा मुझ भगवान्‌के तत्त्वको मैं जो कुछ और जितना कुछ हूँ—वह पूरा-पूरा जान लेता है और इस प्रकार तत्त्वसे जानकर वह तुरंत ही मुझमें मिल जाता है।'

यह ब्रह्मज्ञान और यह पराभक्ति—केवल ऊँची-ऊँची बातोंसे नहीं मिलती। निरी बातोंसे तो ब्रह्मज्ञानके नामपर मिथ्या अभिमान और भक्तिके नामपर विषय-विमोहकी प्राप्ति ही होती है। सत्संग, साधुसेवन, सद्विचार, वैराग्य, भजन, निष्काम कर्म, यम-नियमादिका पालन और तीव्रतम अभिलाषा होनेपर ही इनकी प्राप्ति सम्भव है। भगवत्कृपाकी तो शरीरमें प्राणोंकी भाँति सभी साधनाओंमें अनिवार्य आवश्यकता है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

कर्म-रहस्य

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कर्मके सम्बन्धमें बात यह है कि कर्म तीन प्रकारके हैं—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। मनुष्य प्रतिक्षण सकामभावसे जो कुछ भी कर्म करता है, वह 'क्रियमाण' है। मनुष्यका किया

हुआ प्रत्येक कर्म कर्मसंग्रहमें संगृहीत होता रहता है, जो समयपर कर्मफलदायिनी भागवती शक्तिके द्वारा 'प्रारब्ध' बनाया जाकर यथायोग्य शुभाशुभ फल प्रदान करता है। यह जमा होनेवाला कर्म संचित है। इस क्षणके पूर्वतकके हमारे सारे कर्म इस कर्मकी गोदाममें जा चुके हैं। इस कर्मराशिमें-से जितने कर्म अलग करके एक जन्मके लिये फलरूपसे नियत कर दिये जाते हैं, वही 'प्रारब्ध' है। इसीके अनुसार जाति, आयु, भोग इत्यादि प्राप्त होते हैं। प्रारब्धका यह फल साधारणतया सभीको बाध्य होकर भोगना पड़ता है। कोई भी सहजमें इस प्रारब्धफलभोगसे अपनेको बचा नहीं सकता—'**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**' इस प्रकार भागवती-शक्तिके नियन्त्रणमें प्रारब्धके अनुसार मनुष्यको कर्मफल भोगना ही पड़ता है। परन्तु यह नियम नहीं है कि पूर्वजन्मोंमें किये गये कर्मोंके संचितसे ही प्रारब्ध बने। प्रबल कर्म होनेपर वह इसी जन्ममें संचितसे तुरंत प्रारब्ध बनकर अपना शुभाशुभ फल—फलदानोन्मुख प्रारब्धके बीचमें ही भुगता देते हैं। इसके भी नियम हैं। मतलब यह कि प्रारब्धके अनुसार जो फल नहीं होना है, वह उस प्रारब्धके अनुसार तो होगा ही नहीं—यह सत्य है—परन्तु 'वह होगा ही नहीं' यह निश्चित नहीं है। नवीन कर्म करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है, वह कोई ऐसा प्रबल कर्म भी कर सकता है—जो हाथों-हाथ प्रारब्ध बनकर उसे तुरंत फल प्रदान कर दे। जैसे किसीके पूर्वकर्मजनित प्रारब्धके अनुसार 'पुत्र होनेका विधान नहीं है'—परंतु वह शास्त्रीय 'पुत्रेष्टि यज्ञ' विधि तथा श्रद्धापूर्वक कर ले तो उसको पुत्र हो सकता है। इसी प्रकारके प्रबल कर्मोंद्वारा धन, मान, आरोग्य, आयु आदि पदार्थोंकी प्राप्ति भी हो सकती है। ठीक ऐसे ही प्रबल अशुभ कर्मोंके द्वारा इसी जन्ममें अशुभ फल भी (पूर्वकर्मजनित प्रारब्धमें न होनेपर भी) मिल सकते हैं। इससे पूर्वकृत कर्मोंके द्वारा बने हुए प्रारब्धका नाश नहीं हो जाता। उसके बीचमें ही नया फल मिल जाता है और उस फलकी अवधि समाप्त होते ही पुनः वही प्रारब्ध लागू हो जाता है।

जैसे कर्म अपना फल अवश्य देता है, यह कर्मका अटल नियम है। वैसे ही यह भी नियम है कि 'सम्यक् ज्ञान' अथवा 'भगवान्में पूर्ण समर्पण' से सारी कर्मराशि भस्म भी हो जाती है। 'संचित'—अनन्त जन्मोंके संगृहीत कर्म जल जाते हैं। उनमें 'प्रारब्ध' उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रह जाती। नवीन 'क्रियमाण' कर्म कर्तृत्वके अभावसे 'संचित' नहीं बन सकते। भूँजे हुए बीजोंसे जैसे अंकुर नहीं उत्पन्न होते, वैसे ही वे संचितका उत्पादन नहीं कर सकते। रहा 'प्रारब्ध' का भोग—सो वह भी भोक्तापनका अभाव और ब्रह्मानन्द-स्वरूप हो जानेसे अथवा भगवान्के प्रत्येक मंगलमय विधानमें एकरस आनन्दका नित्य अनुभव होते रहनेसे सुख-दुःख उपजानेवाला नहीं होकर खेलमात्र होता है। इस प्रकार तीनों ही कर्म नष्ट हो जाते हैं। यही कर्मविज्ञानका शास्त्रीय नियम है और यह सर्वथा सत्य है। कर्मकी भूमिकामें इसे असत्य बतलानेका साहस करना दुःसाहसमात्र है।

भगवान्की दृष्टिसे बात दूसरी ही है। वहाँ भूत, भविष्य और वर्तमानका भेद नहीं है। उनके लिये सभी वर्तमान है। और जो कुछ भी होता है, सब पहलेसे रचा हुआ ही होता है। यह उनकी नित्यलीला है।

जगत्की छोटी-बड़ी सभी घटनाएँ उनकी इस नित्य-लीलाका ही अंग हैं। वहाँ कुछ भी नया नहीं बनता, केवल नया—नित्य नया-नया दीखता है। रचा हुआ तो है पहलेसे ही। जैसे सिनेमाके फिल्ममें सारे दृश्य पहलेसे अंकित हैं, हमारे सामने एक-एक आते हैं, वैसे ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्त अतीत, वर्तमान और भविष्य सभी इस विराट् फिल्ममें अंकित हैं। क्षुद्र-से-क्षुद्र जीवका नगण्य संकल्प भी इस फिल्मका ही दृश्य है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षाऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १०।२१ बजेतक	सोम	उ० षा० सायं ६।५८ बजेतक	१० जुलाई	**श्रावण सोमवारव्रत।**
द्वितीया ״ ११।२५ बजेतक	मंगल	श्रवण रात्रिमें ८।३२ बजेतक	११ ״	**भद्रा** रात्रिमें ११।४४ बजेसे।
तृतीया ״ १२।२ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ״ ९।३८ बजेतक	१२ ״	**भद्रा** दिनमें १२।२ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें ९।५ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ९।५ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।७ बजे।
चतुर्थी ״ १२।६ बजेतक	गुरु	शतभिषा ״ १०।१२ बजेतक	१३ ״	× × ×
पंचमी ״ ११।४० बजेतक	शुक्र	पू० भा ״ १०।१७ बजेतक	१४ ״	**मीनराशि** दिनमें ४।१६ बजेसे।
षष्ठी ״ १०।४६ बजेतक	शनि	उ० भा० ״ ९।५५ बजेतक	१५ ״	**भद्रा** दिनमें १०।४६ बजेसे रात्रिमें १०।५ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ९।५५ बजेसे।
सप्तमी ״ ९।२५ बजेतक	रवि	रेवती ״ ९।११ बजेतक	१६ ״	**मेषराशि** रात्रिमें ९।११ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ९।११ बजे, **कर्क-संक्रान्ति** रात्रिमें ३।१७ बजे, **दक्षिणायन** एवं **वर्षा-ऋतु** प्रारम्भ।
अष्टमी ״ ७।४३ बजेतक	सोम	अश्विनी ״ ८।५ बजेतक	१७ ״	**श्रावण सोमवारव्रत, मूल** रात्रिमें ८।५ बजेतक।
नवमी प्रात: ५।४२ बजेतक दशमी रात्रिमें ३।२७ बजेतक	मंगल	भरणी सायं ६।४४ बजेतक	१८ ״	**भद्रा** दिनमें ४।३४ बजेसे रात्रिमें ३।२७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें १२।२० बजेसे।
एकादशी ״ १।३ बजेतक	बुध	कृत्तिका ״ ५।११ बजेतक	१९ ״	**कामदा एकादशीव्रत** (स्मार्त)।
द्वादशी ״ १०।३५ बजेतक	गुरु	रोहिणी दिनमें ३।३४ बजेतक	२० ״	**मिथुनराशि** रात्रिमें २।४३ बजेसे, **एकादशीव्रत** (वैष्णव), **पुष्य नक्षत्रका** सूर्य दिनमें ३।३५ बजे।
त्रयोदशी ״ ८।६ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ״ १।५३ बजेतक	२१ ״	**भद्रा** रात्रिमें ८।६ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ५।४४ बजेतक	शनि	आर्द्रा ״ १२।१६ बजेतक	२२ ״	**भद्रा** प्रात: ६।५६ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिशेष ५।१० बजेसे।
अमावस्या दिनमें ३।३० बजेतक	रवि	पुनर्वसु ״ १०।४९ बजेतक	२३ ״	**अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।२९ बजेतक	सोम	पुष्य दिनमें ९।३४ बजेतक	२४ जुलाई	**मूल** दिनमें ९।३४ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
द्वितीया ״ ११।५० बजेतक	मंगल	आश्लेषा ״ ८।३९ बजेतक	२५ ״	**सिंहराशि** दिनमें ८।३९ बजेसे, **धर्मसम्राट स्वामी करपात्री-जयन्ती।**
तृतीया ״ १०।३१ बजेतक	बुध	मघा ״ ८।३ बजेतक	२६ ״	**भद्रा** रात्रिमें १०।५ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** दिनमें ८।३ बजेतक।
चतुर्थी ״ ९।३९ बजेतक	गुरु	पू० फा० ״ ७।५३ बजेतक	२७ ״	**भद्रा** दिनमें ९।३९ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें १।५७ बजेसे।
पंचमी ״ ९।१५ बजेतक	शुक्र	उ० फा० ״ ८।११ बजेतक	२८ ״	**नागपंचमी।**
षष्ठी ״ ९।२३ बजेतक	शनि	हस्त ״ ९।० बजेतक	२९ ״	**तुलाराशि** रात्रिमें ९।३९ बजेसे।
सप्तमी ״ १०।३ बजेतक	रवि	चित्रा ״ १०।१९ बजेतक	३० ״	**भद्रा** दिनमें १०।३ बजेसे रात्रिमें १०।३५ बजेतक, **गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती।**
अष्टमी ״ ११।८ बजेतक	सोम	स्वाती ״ १२।६ बजेतक	३१ ״	**श्रावण सोमवारव्रत।**
नवमी ״ १२।४१ बजेतक	मंगल	विशाखा ״ २।१६ बजेतक	१ अगस्त	**वृश्चिकराशि** प्रात: ७।४४ बजेसे।
दशमी ״ २।३५ बजेतक	बुध	अनुराधा ״ ४।४४ बजेतक	२ ״	**भद्रा** रात्रिमें ३।३१ बजेसे, **मूल** दिनमें ४।४४ बजेसे।
एकादशी ״ ४।३२ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिमें ७।२० बजेतक	३ ״	**भद्रा** दिनमें ४।३२ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका), **आश्लेषा**का सूर्य दिनमें ३।५६ बजे, **धनुराशि** रात्रिमें ७।२० बजेसे।
द्वादशी सायं ६।३३ बजेतक	शुक्र	मूल ״ ९।५६ बजेतक	४ ״	**मूल** रात्रिमें ९।५६ बजेतक।
त्रयोदशी रात्रिमें ८।३३ बजेतक	शनि	पू० षा० ״ १२।२० बजेतक	५ ״	**शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें ९।५६ बजे	रवि	उ० षा० ״ २।२६ बजेतक	६ ״	**भद्रा** रात्रिमें ९।५६ बजेसे, **मकरराशि** प्रात: ६।५२ बजेसे।
पूर्णिमा ״ ११।२ बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिशेष ४।६ बजेतक	७ ״	**भद्रा** दिनमें १०।३० बजेतक, **पूर्णिमा, रक्षाबन्धन भद्राके** बाद १०।३० बजेसे, **खण्ड चन्द्रग्रहण** प्रारम्भ रात्रिमें १०।५३ बजे एवं मोक्ष रात्रिमें १२।४८ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत।**

कृपानुभूति

सबका रखवाला है राम

इस चराचर जगत्‌का समग्र कार्य-व्यापार किसी एक शक्तिद्वारा संचालित एवं नियन्त्रित होता है। इस परम सत्यकी व्याख्या विद्वान् अपने-अपने विचारानुसार करते हैं। नि:सन्देह एक वर्ग ऐसा भी है जो ऐसी किसी सत्ता या शक्तिका अस्तित्व स्वीकार ही नहीं करता। वे बुद्धिवादी इस ओर तबतक ध्यान नहीं देते, जबतक कि उन्हें कोई असामान्य अथवा असाधारण अनुभूति न हो।

अब मैं इस सम्बन्धमें अपना अनुभव बताता हूँ। यह घटना लगभग १०-१२ वर्ष पूर्वकी है। उस दिन मैं घरमें अकेला था। दोपहरमें मैंने रसोईमें भोजन गर्म किया, जो पत्नी बनाकर रख गयी थी। फिर भोजन लेकर दूसरे कमरेमें गया तथा वहाँ टी०वी० देखते हुए भोजन किया तत्पश्चात् वहीं बिस्तरपर विश्रामहेतु लेट गया। थोड़ी देरमें नींद आ गयी। पता नहीं कितनी देरतक सोता रहा। कुछ शोर सुनकर मेरी नींद खुल गयी। बाहर चारदीवारीमें लगे गेटको कोई बहुत जोर-जोरसे पीट रहा था। पता नहीं कौन था, जो इतनी जोरसे गेट पीट रहा था? रसोईकी खिड़कीसे वह गेट साफ दिखायी देता है; अत: मैंने सोचा कि पहले देखूँ कि है कौन? जैसे ही मैं रसोईमें घुसा, मैं चौंक गया। रसोईघर असामान्य रूपसे गर्म हो रहा था। तभी मेरी दृष्टि गैंसके चूल्हेपर पड़ी। मैं भोजन गर्म करनेके पश्चात् इसे बन्द करना भूल गया था। मैंने तुरंत चूल्हा बन्द किया, फिर मैं जल्दीसे रसोईघरसे निकलकर, गलियारेका दरवाजा खोल, बाहर गेटपर पहुँचा। वहाँ कोई भी नहीं दिखायी दिया। मैंने गेट खोलकर, बाहर सड़कपर निकलकर दायें-बायें देखा, कहीं कोई नजर ही नहीं आया; जबकि अभी कुछ क्षणपूर्व ही कोई गेट इतनी जोरसे खटखटा रहा था! जो भी था, मैं जल्दीसे गेट बन्दकर पुन: रसोईमें आया। देखा तो चूल्हेसे लगभग डेढ़ फुट ऊपर लगा पत्थर, जिसपर मसालेके डिब्बे आदि रखे थे, बहुत तप रहा था। पर अभी उसपर बिछे तथा नीचेको लटकते कागजने आग नहीं पकड़ी थी। चूल्हेके पीछेकी दीवार भी बहुत तप रही थी किंतु किसी भी वस्तुने अभी आग नहीं पकड़ी थी। न ही किसी प्रकारकी क्षति हुई थी। शायद कुछ और समयतक मैं सोता रहता तो कोई दुर्घटना घट सकती थी; क्योंकि वहीं गैसका सिलेण्डर भी रखा था, घी-तेलके डिब्बे भी थे।

दोपहरको प्राय: कोई भिक्षुक या चन्दा माँगनेवाले या सामान बेचनेवाले आते रहते हैं और तबतक गेट खटखटाते रहते हैं, जबतक उन्हें उत्तर न मिल जाय। ऐसे व्यक्ति क्रमश: घर-घर जाते हैं, किंतु इतनी जोरसे गेट कभी किसीने नहीं खटखटाया, जैसा उस दिन हुआ, जिससे मेरी नींद खुल गयी और एक दुर्घटना होनेसे बच गयी। इसे भगवत्कृपा नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे?

मैं जानता हूँ कि बहुत-से लोग इसे संयोग कहेंगे। चलिये मैं यह मान लेता हूँ किसी व्यक्तिका आना मात्र संयोग ही था। क्या यह भी संयोग था कि वह उसी समय आया जबकि यहाँ एक दुर्घटनाकी सम्भावना जन्म ले रही थी? यह भी संयोग था कि उसने इतने जोरसे गेट खटखटाया कि मेरी नींद खुल गयी। क्या यह भी संयोग था कि वह तबतक गेट खटखटाता रहा जबतक मेरी नींद नहीं टूटी। यह भी संयोग था कि वह उस समय हमारे ही घर आया और यह भी संयोग था कि वह अगल-बगल, आमने-सामनेके किसी गेटपर नहीं गया।

जो भी हो, मुझे आजतक नहीं पता चला कि आगन्तुक कौन था, हमारे यहाँ आनेका उसका क्या प्रयोजन था, गेट खुलनेतक वह रुका क्यों नहीं, जबकि इतनी जोरसे गेट खटखटाया था, जैसे तोड़ ही देता। आवाज सुनकर गेट खोलनेमें मुझे एक मिनट भी तो नहीं लगा था, इतनी-सी देरमें वह कहाँ चला गया? जैसे ही मेरी नींद खुली गेट खटखटाना बन्द हो गया? जैसे कि गेट खटखटानेवालेको दिखायी दे रहा था कि अन्दर कमरेमें मैं नींदसे उठ गया हूँ। मैंने तो बाहर निकलकर भी देखा था। गर्मीकी दोपहरमें सड़कपर पूरा सन्नाटा था। कहीं कोई नहीं था। कौन था वह? वही जाने जिसने उसे भेजा था! वही कण-कणके क्षण-क्षणका नियन्ता। यदि अब भी आप इसे भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं स्वीकार करें तो आपकी इच्छा!

—कैलाश पंकज श्रीवास्तव

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सच्ची तीर्थयात्रा

सन् १८६८ ई०की बात है। श्रीरामकृष्ण परमहंस तीर्थयात्रापर निकले थे। उनके साथ दक्षिणेश्वरके काली-मन्दिरके प्रबन्धक मथुर बाबू और परिवारके कुछ लोग थे। अपने यात्रा-क्रममें एक बार पूरी टोली देवघरमें ठहरी। उन दिनों वह पूरा नगर तथा आस-पासके गाँव भयंकर अकालकी चपेटमें थे। वहाँके स्थानीय आदिवासी संथाल लोग कई दिनोंसे भूखे थे। उनमेंसे कुछ लोग भोजनके अभावमें परलोक सिधार चुके थे। दुर्बलताके कारण उन लोगोंके शरीर अस्थिपंजर-जैसे दीखते थे। उनके पास तन ढकनेके लिये पर्याप्त कपड़े भी नहीं थे। श्रीरामकृष्ण इस दृश्यको सहन नहीं कर सके। वे भी उन संथालोंके बीच बैठकर जोरोंसे रोने लगे। उन्होंने मथुर बाबूसे उनके कष्टोंको दूर करनेको कहा। मथुर बाबू बोले—'यहाँ तो बहुत सारे गरीब लोग हैं। मैं इन सब लोगोंकी सहायता कैसे कर सकता हूँ? फिर हमें काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थोंका खर्च भी निबटाना होगा।' श्रीरामकृष्णने कहा—'इन अकाल-पीड़ितोंको इस हालमें छोड़कर मैं तीर्थयात्रापर नहीं जाना चाहता। ये जगदम्बाकी सन्तान हैं। मैं भी इनके साथ आमरण उपवास करूँगा। तुम्हारी तीर्थयात्राकी मैं बिलकुल ही परवाह नहीं करता।'

हार मानकर मथुर बाबूको उन संथाल आदिवासियोंको खिलाने और वस्त्र देनेमें काफी धन खर्च करना पड़ा और तभी श्रीरामकृष्ण आगेकी यात्रा जारी रखनेको सहमत हुए।—**उमेश प्रसाद सिंह**

(२)

अच्छी आदतोंसे बच्चोंको रखें स्वस्थ

स्वस्थ रहनेके नियमोंका पालन अगर बच्चेको बचपनमें ही करवाना शुरू कर दिया जाय तो उसके जिन्दगीभर नीरोग रहनेकी सम्भावना बनी रह सकती है। टेढ़ी नींवपर बनी इमारत सीधी नहीं होती। खानपान एवं रहन-सहनके नियम बचपनमें ही आदतोंका रूप ले लें तो भविष्यमें औषधियोंकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व उठना और रात्रिको जल्दी सो जाना स्वास्थ्यके लिये हितकर होता है। प्रात: उठकर जलका सेवन शरीरको तन्दुरुस्त रखता है। वहीं रातको उसका प्रयोग उसको रोगी बनाता है। प्राय: बच्चे स्कूल जानेकी जल्दीमें मलत्याग ठीकसे नहीं कर पाते। मल-प्रवृत्तिको रोकनेसे पिण्डलियोंमें ऐंठन एवं दृष्टिदोष-जैसे विकार उत्पन्न होते हैं। छोटे बच्चोंमें चश्मा लगनेके विभिन्न कारणोंमेंसे एक कारण यह भी है। जहाँतक हो सके बच्चोंको तेलमें पका अन्न न दें। दूधमें पका अन्न आँखोंके लिये विशेष रूपसे हितकर है। दूधमें फल डालकर उसका शेक बनाकर पीनेकी परम्पराको लोग एक अच्छी परम्परा समझते हैं, लेकिन आयुर्वेदमें आम, केला, बेर, नारियल आदि फलोंका दूधके साथ प्रयोग विभिन्न रोगोंका कारण बताया गया है। फास्ट फूडका बहुलतासे प्रयोग इनको बनानेवाली कम्पनियोंको चाहे लाभान्वित करता हो, पर बच्चोंमें इनके माध्यमसे अनेक रसायनिक द्रव्य उनके शरीरको हानि पहुँचाते हैं। आहारका सम्बन्ध मनके साथ भी होता है। घर-परिवारको खुशहाल बनानेके लिये बच्चोंको ईमानदारीकी कमाईका ही खाना खिलाना चाहिये। आमला, अनार एवं सैन्धव लवणको छोड़कर बच्चोंको खट्टी एवं नमकीन वस्तुओंका प्रयोग कम मात्रामें करवायें। चायकी आदत न डलवाकर दूधका प्रयोग नियमित रूपसे करवाना चाहिये। दहीका प्रयोग स्वास्थ्यके लिये हितकर होता है, पर शरद् एवं बसन्त ॠतुओंमें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। किसी भी ॠतुमें रातको दही न खायें। बहुत-से लोग बच्चोंको शहद खानेके लिये देते हैं। ध्यान रहे कि शहदको अधिक मात्रामें न दें और गर्म वस्तुओंके साथ न लें। बहुत-से बच्चे फैशनके नामपर सिरपर

तेल लगानेसे परहेज करते हैं। विभिन्न प्रकारके कृत्रिम खुशबूदार तेलोंके स्थानपर सरसों, आमला, भृंगराज आदिसे निर्मित तेलोंका प्रयोग करना चाहिये। स्नानसे पूर्व भी तेल-मालिशका प्रयोग अच्छा फल देता है। स्नान करते समय ध्यान रखें कि सिरपर गर्म पानीका प्रयोग न हो। कृत्रिम टूथपेस्टके स्थानपर नीम, खदिर, करंज आदिकी दातुनका प्रयोग करें। अभिभावकोंको याद रखना चाहिये कि आदतें शुरूमें एक धागेके समान होती हैं और बादमें एक मोटे रस्सेका रूप धारण कर लेती हैं, जिन्हें परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता। अत: बच्चोंमें शुरूमें ही अच्छी आदतें डालना स्वास्थ्य-प्राप्तिका प्रथम सोपान है।

—अनूपकुमार गक्खड़

(३)

आयुर्वेदिक अनुभूत प्रयोग

(१) अग्निदग्ध

१-आगसे या किसी गरम पदार्थ (घी, तेल, पानी आदि) से जल जानेपर प्राथमिक उपचारके रूपमें घृतकुमारी (ग्वारपाठे)-का रस थोड़ी-थोड़ी देरमें बार-बार (आठ-दस बार) लगानेसे शीघ्र राहत मिलती है। जलन शान्त होती है एवं फफोले नहीं होते। यदि कभी घाव भी हो जाय तो ग्वारपाठेका गूदा लगानेसे दो-चार दिनमें ठीक हो जायगा।

२-तुलसीके पत्तों का रस नारियल के तेल में मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। छाले नहीं होते।

(२) बच्चों का पीलिया

बच्चोंका पीलिया लीवरकी खराबीसे होता है। उसके लिये—आँवलेका रस एवं शहद समान मात्रामें मिलायें एवं बच्चेकी उम्रके अनुसार एक चम्मचसे दो चम्मच दिनमें तीन बार या दो बार एक सप्ताहतक दें, इससे बच्चोंके पीलिया रोगमें लाभ होता है, पीलिया मिट जाता है तथा लीवर पुष्ट होता है। यह प्रयोग बड़ोंके लिये भी उपयोगी है।

(३) बच्चेका नींदमें बिस्तरपर पेशाब करना

१-यदि कोई बच्चा बड़ी उम्रमें भी बिस्तरपर रातमें पेशाब करता है तो परिवारके लोगोंको बड़ी शर्म आती है। दो सप्ताहतक रातमें सोनेसे पहले नित्य ५० ग्राम मूँगफलीके दाने ठीकसे रोज ताजा सेंककर छिलके निकालकर खिला दें, पानी नहीं पिलायें। पूर्ण लाभ होगा।

२-रोगीको रोज आधी सिँकी आधी कच्ची तिल्ली मिलाकर ५० ग्राम खिलानेसे भी बच्चा बिस्तरपर पेशाब करना बन्द कर देता है।

३-होम्योपैथीमें बेलाडोना ३० या कल्केरिया कार्ब ३० की ४-५ गोली दिनमें तीन बार, चार-छ: दिन देनेसे अच्छा लाभ होता है।

४-रातमें नींदमें बच्चे बिछौनेपर पेशाब कर देते हैं, उनको रातमें सोते समय दूधके साथ शंखपुष्पी चूर्ण ३ माशा देनेसे अच्छा लाभ होता है।

(४) बच्चोंके पेटमें कृमि

छोटे बच्चोंके पेटमें कृमि हो जाते हैं। तब बच्चा रातमें नींदमें दाँत पीसता है या दाँत रगड़ता है। उसके मुँहसे दुर्गन्ध आने लगती है शरीर दुबला हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है। कभी-कभी कृमिके कारण शरीरपर पित्ती भी उछलने लगती है। इसके लिये—

१-छोटे बच्चोंके लिये होम्योपैथीमें चायना-३० की ३-४ गोली दिनमें ३ बार देनेसे तत्काल लाभ होता है।

(५) नेत्रज्योतिवर्धक योग

१-त्रिफला चूर्णको शहदके साथ मिलाकर दिनमें दो बार लेनेसे नेत्रज्योति बढ़ती है।

२-शुद्ध शहदको भी नेत्रोंमें लगानेसे अच्छा लाभ होता है।

(६) बुद्धिवर्द्धक चूर्ण

कुछ बच्चे मंदबुद्धि होते हैं, वे पढ़ते हैं, पर उन्हें याद नहीं रहता, जल्दी ही भूल जाते हैं। ऐसे बच्चोंके लिये निम्न चूर्ण बड़ा उपयोगी है—

१-शंखपुष्पी, ब्राह्मी एवं बच शुद्ध रूपमें समान भागमें लेकर कपड़छन चूर्ण बना ले, उसमें चूर्णके

बराबर मिश्री मिलाकर नित्य एक चम्मच चूर्ण दूधके साथ बच्चोंको देते रहनेसे बच्चोंकी बुद्धि बढ़ती है, याददाश्त अच्छी होती है, बच्चे चतुर बनते हैं। इसे घीके साथ चाटकर दूध पीनेका भी विधान है।

२-अकेली शंखपुष्पीका चूर्ण ३ से ६ माशातक दूध-शक्करके साथ नित्य प्रातः लेते रहनेसे स्मरणशक्तिमें अलौकिक परिवर्तन होते देखा गया है।

३-पढ़ते-पढ़ते जिनकी आँखोंसे आँसू आते हैं एवं सिरदर्द होता है, उन्हें भी शंखपुष्पी लाभ पहुँचाती है।

(७) वृक्क (किडनी)-की पथरी

१० ग्राम दारूहल्दी (पंसारीके यहाँ मिल जाती है)-को एक लीटर पानीमें काढ़ा बनाकर जब वह २५० ग्रामके लगभग शेष रह जाय, उतारकर ठंडाकर नित्य पीनेसे ८-१० दिनमें किडनीकी पथरी गलकर निकल जायगी। इस २५० ग्राम काढ़ेको तीन भागोंमें बाँटकर दिनमें ३ बार सबेरे खाली पेट दोपहर ३ बजे एवं सन्ध्याको भोजनके बाद पीये। रोग न मिटनेपर दवा २०-२५ दिन भी ले सकते हैं।

तेल, खटाई, मक्का आदि न खायें।

—वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्त

(४)

गंगाजलका चमत्कार

मैं वल्लभ-सम्प्रदायसे हूँ और प्रभुके बालरूप श्रीलड्डूगोपालजीकी सेवा करता हूँ। श्रीगंगामातामें मेरी अटूट श्रद्धा है। घटना १७ वर्ष पूर्वकी है। मुझे बैठनेके स्थानपर तकलीफ महसूस हुई तो मैंने डॉक्टरको दिखाया। डॉक्टरने कहा कि आपको फिस्टुला नामक बीमारी हुई है। इसमें मल निकलनेकी जगहके आसपास घाव हो जाते हैं और उनमें पस भर जाता है। डॉक्टरने इलाज तो बहुत किया, पर कोई फर्क नहीं पड़ा। अन्तमें डॉक्टरने कहा कि लगता है गाँठ बन गयी है, ऑपरेशन करके इसे निकालना होगा। ऑपरेशन हुआ और दो गाँठें निकाली गयीं, जिसकी बॉयोप्सीके लिये दो जगह भेजा गया। रिपोर्ट बहुत खराब आयी कि भयंकर टी०बी० है। डॉक्टरोंने परिवारवालोंसे कहा कि इनका चारसे छः महीनेका जीवन ही बचा है। मुझे भी यह बात पता चल गयी कि अब जीवनमें कुछ ही महीने शेष बचे हैं। मेरे मनमें एक इच्छा थी। मैंने १९५२ से कई बार चार धामकी यात्रा की थी, पर किसी भी बार श्रीगंगोत्रीजीके दर्शन नहीं हुए थे। मेरी गंगामातामें पूर्ण श्रद्धा थी और श्रीगंगोत्रीजीमें गंगामाताके दर्शन करनेकी हार्दिक इच्छा थी। मैंने अपने परिवारवालोंको इच्छा बतायी तो मेरे परिवार और ससुराल—दोनों पक्षमें इसका भयंकर विरोध हुआ। कोई मुझे इस अवस्थामें दर्शनहेतु जाने नहीं देना चाहता था।

पर मैं अपने निश्चयपर अडिग था। अन्तमें परिवार तैयार हुआ। मेरी अवस्था यह थी कि मुझे दिनमें दो-तीन बार ड्रेसिंग करानी पड़ती थी; क्योंकि घावसे पस निरन्तर निकलता रहता था। मैं परिवारसमेत श्रीगंगोत्रीधाम पहुँचा। गंगामाताके दर्शन किये। तीस मिनटतक माताके निर्मल जलमें स्नान किया और माताका अभिषेक किया। प्रभुकी ऐसी कृपा हुई और गंगाजलका ऐसा चमत्कार हुआ कि जब मैं वापस आया तो फोड़े फूट गये डॉक्टरोंने देखा और छोटा ऑपरेशनकर उस जगहको साफ किया। फिर बॉयोप्सीके लिये भेजा गया। रिपोर्ट आयी तो टी०बी० गायब थी। आठ-दस दिनमें ऑपरेशनकी जगह पूरी तरह भर चुकी थी और मैं बिल्कुल स्वस्थ था। अब सत्रह वर्ष हो गये और मैं बिल्कुल ठीक हूँ। दोबारा कभी परेशानी नहीं हुई।

जिस बीमारीका कोई इलाज नहीं था, अमेरिका-तकके डॉक्टरोंने ऐसा कह दिया था कि मेरे जीवनके कुछ महीने ही शेष हैं, उस तकलीफको मेरे लालाजी (प्रभु)-के श्रीचरणकमलोंसे निकली गंगाजीके जलने ठीक कर दिया।—**बालकिशन सोनी**

मनन करने योग्य

सच्ची कृपा

एक बार एक निर्धन ब्राह्मणके मनमें धन पानेकी तीव्र कामना हुई। वह सकाम यज्ञोंकी विधि जानता था; किंतु धन ही नहीं तो यज्ञ कैसे हो? वह धनकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा और व्रत करने लगा। कुछ समय एक देवताकी पूजा करता; परंतु उससे कुछ लाभ नहीं दिखायी पड़ता तो दूसरे देवताकी पूजा करने लगता और पहलेको छोड़ देता। इस प्रकार उसे बहुत दिन बीत गये। अन्तमें उसने सोचा—'जिस देवताकी आराधना मनुष्यने कभी न की हो, मैं अब उसीकी उपासना करूँगा। वह देवता अवश्य मुझपर शीघ्र प्रसन्न होगा।'

ब्राह्मण यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशमें कुण्डधार नामक मेघके देवताका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। ब्राह्मणने समझ लिया कि 'मनुष्यने कभी इनकी पूजा न की होगी। ये बृहदाकार मेघदेवता देवलोकके समीप रहते हैं, अवश्य ये मुझे धन देंगे।' बस, बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मणने उस कुण्डधार मेघकी पूजा प्रारम्भ कर दी।

ब्राह्मणकी पूजासे प्रसन्न होकर कुण्डधारने देवताओंकी स्तुति की; क्योंकि वह स्वयं तो जलके अतिरिक्त किसीको कुछ दे नहीं सकता था। देवताओंकी प्रेरणासे यक्षश्रेष्ठ मणिभद्र उसके पास आकर बोले—'कुण्डधार! तुम क्या चाहते हो?'

कुण्डधार—'यक्षराज! देवता यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे उपासक इस ब्राह्मणको वे सुखी करें।'

मणिभद्र—'तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण यदि धन चाहता हो तो इसकी इच्छा पूर्ण कर दो। यह जितना धन माँगेगा, वह मैं इसे दे दूँगा।'

कुण्डधार—'यक्षराज! मैं इस ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि देवताओंकी कृपासे यह धर्मपरायण हो जाय। इसकी बुद्धि धर्ममें लगे।'

मणिभद्र—'अच्छी बात! अब ब्राह्मणकी बुद्धि धर्ममें ही स्थित रहेगी।' उसी समय ब्राह्मणने स्वप्नमें देखा कि उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। यह देखकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—'मैंने इतने देवताओंकी और अन्तमें कुण्डधार मेघकी भी धनके लिये आराधना की, किंतु इनमें कोई उदार नहीं दीखता। इस प्रकार धनकी आशमें ही लगे हुए जीवन व्यतीत करनेसे क्या लाभ! अब मुझे परलोककी चिन्ता करनी चाहिये।'

ब्राह्मण वहाँसे वनमें चला गया। उसने अब तपस्या करना प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेके कारण उसे अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। वह स्वयं आश्चर्य करने लगा—'कहाँ तो मैं धनके लिये देवताओंकी पूजा करता था और उसका कोई परिणाम नहीं होता था और कहाँ अब मैं स्वयं ऐसा हो गया कि किसीको धनी होनेका आशीर्वाद दे दूँ तो वह निःसंदेह धनी हो जायगा!'

ब्राह्मणका उत्साह बढ़ गया। तपस्यामें ही उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। वह तत्परतापूर्वक तपस्यामें ही लगा रहा। एक दिन उसके पास वही कुण्डधार मेघ आया। उसने कहा—'ब्रह्मन्! तपस्याके प्रभावसे आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है। अब आप धनी पुरुषों तथा राजाओंकी गति देख सकते हैं।' ब्राह्मणने देखा कि धनके कारण गर्वमें आकर लोग नाना प्रकारके पाप करते हैं और घोर नरकोंमें गिरते हैं।

कुण्डधार बोला—'भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके आप यदि धन पाते और अन्तमें नरककी यातना भोगते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जीवका लाभ तो कामनाओंका त्याग करके धर्माचरण करनेमें ही है। उनपर सच्ची कृपा तो उन्हें धर्ममें लगाना ही है। उन्हें धर्ममें लगानेवाला ही उनका सच्चा हितैषी है।'

ब्राह्मणने मेघके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कामनाओंका त्याग करके अन्तमें मुक्त हो गया।

[**महाभारत, शान्तिपर्व**]

कल्याणका आगामी ९२वें वर्ष (सन् २०१८ ई०)-का विशेषाङ्क

‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’

(उत्तरार्ध)

[श्लोकाङ्कसहित हिन्दीभाषानुवाद]

भारतीय सनातन संस्कृतिको यथार्थ रूपमें अभिव्यक्त करनेका श्रेय पुराण-वाङ्मयको ही है। वेदोंमें जो विषय सूत्ररूपमें आये हैं, पुराणोंमें उन्हें आख्यान-शैलीके माध्यमसे व्यक्त किया गया है। पुराणोंमें श्रीशिवमहापुराणका महनीय स्थान है। वेद-वेदान्तमें विलसित परम तत्त्व—‘परमात्मा’ का इसमें ‘शिव’ नामसे गान किया गया है। गीताप्रेससे पुराणोंके प्रकाशन-क्रममें कई पुराण ‘कल्याण’ के विशेषाङ्कोंके रूपमें पूर्वमें प्रकाशित हुए हैं। इसी क्रममें पिछले वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें श्रीशिवमहापुराणका पूर्वार्ध (विद्येश्वरसंहिता एवं रुद्रसंहिता) श्लोकसंख्यासहित हिन्दीभाषानुवादके साथ प्रकाशित किया गया था, जिसे पाठक महानुभावोंने बहुत सराहा है। इसका उत्तरार्ध भाग (शतरुद्रसंहितासे वायवीयसंहितातक) कल्याणके ९२वें वर्षके विशेषाङ्करूपमें प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है। इसमें २३५ अध्यायोंमें आये १२४४६ श्लोकोंका श्लोकाङ्कसहित हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जायगा।

इसकी ४२ अध्यायोंवाली शतरुद्रसंहितामें भगवान् शिवके विभिन्न अवतारोंकी कथाका वर्णन है, साथ ही नन्दीश्वरके जन्मकी कथा तथा कालभैरवके माहात्म्यका भी वर्णन है। कोटिरुद्रसंहितामें ४३ अध्याय हैं। इसमें भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंके प्राकट्यकी कथा एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमाका वर्णन है। तदनन्तर इसी संहितामें भगवान् शंकरद्वारा विष्णुको सुदर्शन चक्र प्रदान करनेकी कथा तथा परमकल्याणकारी शिवसहस्रनाम एवं शिवरात्रिव्रतकी कथा, विधि एवं महिमाका वर्णन है। इसकी ५१ अध्यायोंवाली उमासंहिताके प्रारम्भमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा तप करने और शिव-पार्वतीसे वरदानप्राप्तिकी कथा है। तत्पश्चात् भगवती उमाद्वारा विभिन्न अवतार लेकर मधु-कैटभ, धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ, दुर्गमासुर आदिके वधकी कथा है। कैलाससंहितामें कुल २३ अध्याय हैं। इसमें प्रणवके वाच्यार्थ, संन्यासग्रहणकी शास्त्रीय विधि, शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपंच और जीवतत्त्वका विशद वर्णन तथा संन्यासीके अन्त्येष्टिकर्मका वर्णन है। वायवीय-संहिता पूर्व और उत्तर दो खण्डोंमें विभक्त है। इसके पूर्वखण्डमें ३५ अध्याय हैं। इसमें पुराणोंका परिचय, ब्रह्माजीद्वारा परम पुरुष रुद्रकी महिमाका प्रतिपादन, अर्धनारीश्वरस्तोत्र, शैवागम, पाशुपतव्रत और उपमन्युपर शिवकृपाका वर्णन है। इसके उत्तरखण्डमें ४१ अध्याय हैं, जिनमें उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको शिव और शिवाकी विभूतियों, शिवके यथार्थ स्वरूप, शिवज्ञान, पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य, शैवी दीक्षा, पंचमुख महादेवकी आवरण पूजा और महास्तोत्र, योगके भेद, योगमार्गके विघ्न, शिवयोगीके महत्त्व आदिका उपदेश दिया गया है। जैसे श्रीमद्भागवतका दशम स्कन्ध भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंसे ओतप्रोत है, ऐसे ही शिवपुराणका उत्तरार्ध भाग भगवान् शिवकी लीलाओं और उनके भक्तोंकी लीला-कथाओंसे भरा पड़ा है, जैसे भागवतके आचार्य दशम स्कन्धकी कथाओंका ही प्राय: गान करते हैं, ऐसे ही शिवाचार्य भी इन शिवावतारों तथा उनकी आराधनाका वर्णन करते हैं। शिवभक्तगण तो इन संहिताओंको लघु शिवभक्तमाल कहते हैं। ऐसे ही उमासंहितामें मार्कण्डेयपुराणकी तरह भगवती जगदम्बाका कृपामय चरित्र वर्णित है।

इस विशेषाङ्कमें केवल श्रीशिवमहापुराण (उत्तरार्ध)-का भाषानुवाद ही श्लोकसंख्याके साथ दिया जायगा, अत: लेखक महानुभावोंसे सादर अनुरोध है कि वे इस विशेषाङ्कमें प्रकाशनार्थ लेख भेजनेका कष्ट न करें, परंतु शिवपुराणसम्बन्धी कोई विशिष्ट लेख हो तो उसे आगे साधारण अङ्कमें देनेका विचार किया जा सकता है।

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (प्रथम खण्ड) सटीक	२००	789	संक्षिप्त श्रीशिवपुराण—मोटा टाइप	२००
1898	,, ,, ,, (द्वितीय खण्ड) ,,	२००	44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
26,27	श्रीमद्भागवतमहापुराण (दो खण्डोंमें) ,,	५००	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ,,	२७०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३२५
48	श्रीविष्णुपुराण ,,	१४०	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
1432	श्रीवामनपुराण ,,	१२५	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	९०
1131	श्रीकूर्मपुराण ,,	१४०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१६०
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण	२२०	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१२०
	केवल हिन्दीमें		631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२००	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१८०

श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी १४ अगस्त सोमवारको एवं श्रीराधाष्टमी २९ अगस्त मंगलवारको है।)

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ १५०

कन्हैया (कोड 869), गोपाल (कोड 870), मोहन (कोड 871), श्रीकृष्ण (कोड 872)—श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर लिखी गयी चित्रकथाकी इन पुस्तकोंको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर उनके परमधामगमनतककी चुनी हुई लीलाओंसे सजाया गया है। प्रत्येकका मूल्य ₹ १५

पदरत्नाकर (कोड 50) पुस्तकाकार—इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹ ११०

श्रीराधा-माधव-चिन्तन (कोड 49) पुस्तकाकार—इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधा-माधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹ ९०

महाभाव-कल्लोलिनी (कोड 526) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें श्रीराधाकृष्णकी विभिन्न लीलाओंसे सम्बन्धित ११६ पदोंका संग्रह है। मूल्य ₹ ८

मधुर (कोड 343)—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्न शक्ति श्रीराधाजी एवं महाभाग गोपिकाओंके दिव्यातिदिव्य प्रेममय उद्गारोंका ७२ झाँकियोंके रूपमें मनोहर काव्यात्मक चित्रण है। मूल्य ₹ २५

श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
105	विनय-पत्रिका	४०	108	कवितावली	२०	112	हनुमानबाहुक	५
106	गीतावली	४५	110	श्रीकृष्ण-गीतावली	१०	113	पार्वती-मंगल	५
107	दोहावली	२०	111	जानकी-मंगल	७	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै...	४

(श्रीतुलसी-जयन्ती ३० जुलाई रविवारको है।)

प्र० ति० २०-६-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। कृपया पत्र-व्यवहारमें अपना मोबाइल नं० एवं ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें जिससे आपके पत्रका निस्तारण शीघ्र किया जा सके।

2. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन **09235400242/09235400244** उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9 बजेसे 12 बजे एवं 1.30 से 4.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० **9648916010** पर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ २२० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।

4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५